

UNIVERSAL
LIBRARY

OU₁182608

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81
165P

Accession No. P. G. H 1997

Author

उपाध्याय, अयोध्यासिंह हरिऔध

Title

पद्यप्रमोद . 1955 .

This book should be returned on or before the date last marked below.

पद्य-प्रमोद

लेखक

कविसम्राट साहित्यवाचस्पति
श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

सर्वोदय साहित्य मंदिर,
ढोळी, (बसस्टेण्ड,) हैदराबाद ब.

प्रकाशक

कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स

बड़े महाराज का मन्दिर

बनारस — १

मूल्य पाँच रुपया

जून १९५५

अन्य विक्री केन्द्र
कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स
ज्ञानवापी, बनारस—१

बिहार ग्रन्थ कुटीर
खजांची रोड, पटना—४



बम्बई बुक डिपो
१९५/१ हरीसनरोड
कलकत्ता—७

मुद्रक
मुन्नीलाल
कल्याण प्रेस, काशी ।

हम सब मिलकर इस बात को दिखला दें कि हम हरिऔधजी के पूजक हैं, इस काम में हम और किसी से कम नहीं हैं और वह तभी हो सकता है, जब हम उनकी रचनाओं को मनोयोग पूर्वक पढ़ेंगे। जो सुन्दर शब्दावली के साथ ऊँचे भावों का समावेश देखना चाहते हों वे उपाध्याय जी के ग्रन्थों को पढ़ें। जो हिन्दी के द्वारा संस्कृत सीखना चाहें, वे भी हरिऔध जी की रचनाएँ देखें और जो पुरानी चीजों को नये रंगरूप में देखना चाहते हैं, वे भी उपाध्याय जी की पुस्तकें पढ़ें, जो नयी चीजों को पुराने रूप में देखना चाहते हों वे भी उपाध्याय जी की रचनायें पढ़ें।

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद

कविता क्रम

संख्या	विषय	पृष्ठ
१	— प्रभु प्रताप	१
२	— लोकसत्ता	५
३	— मनोव्यथा	७
४	— भारत गीत	८
५	— कामना	१२
६	— विद्या	१३
७	— वेद हैं	१६
८	— प्रेम्भारा	२५
९	— धर्मवीर	३२
१०	— कर्मवीर	४२
११	— जीवनमुक्त	४५
१२	— देव-बुद्धि	४६
१३	— कुलीनता	५०
१४	— आरम्भ-शूरता	५३
१५	— मन	५६
१६	— पौरुष	६०
१७	— साहित्य	६२
१८	— चितौड़ की एक शामद रजनी	६५
१९	— बकिमणी-सन्देश	७८
२०	— <u>सती सीता</u>	८४
२१	— <u>सुतवती सीता</u>	८८
२२	— बीरवर सौमित्र	९२
२३	— उर्मिला	९७
२४	— सच्चा प्रेम	१०१
२५	— संयुक्ता	१०५
२६	— शिशु स्नेह	१०६
२७	— बामन और बलि	१०९

संख्या	विषय	पृष्ठ
२८—	कमल	११२
२९—	पर्णकुटी	११५
३०—	रवि सहचरी	११८
३१—	एक चिरपथिक	१२०
३२—	<u>दिल के फफोले</u>	१२३
३३—	<u>दीन की आह</u>	१२८
३४—	<u>दुखिया के आँसू</u>	१३०
३५—	<u>सेबल और निव</u>	१३२
३६—	<u>आँख का आँसू</u>	१३५
३७—	मतलब की दुनियाँ	१४२
३८—	दिल ट्योलो	१४५
३९—	एक तिनका	१४६
४०—	एक मसा	१४७
४१—	एक बून्द	१४८
४२—	रात का जागना	१४९
४३—	काँटा और फूल	१५०
४४—	जोहित वसना	१५२
४५—	उपःकाल	१५३
४६—	राग रंजित गगन	१५३
४७—	भारत गगन	१५४
४८—	उषा	१५४
४९—	वर वनिता	१५६
५०—	<u>आर्य वाला</u>	१५७
५१—	<u>कुल कामिनी</u>	१६१
५२—	<u>आर्य महिला</u>	१६४
५३—	<u>तरु और लता</u>	१६५

महाकवि “हरिऔध”

(एक परिचय)

श्री हरिऔध का जन्म वैशाख कृष्ण तृतीया सं० १९२२ तदनुसार १५ अप्रैल सन् १८६५ ई० को निजामाबाद, आजमगढ़, में हुआ। आप अगस्त्य गोत्रीय, शुक्ल यजुर्वेदीय, सनाढ्य ब्राह्मण थे। आपका घराना चिरकाल से प्रतिष्ठित रहा है और वह पूर्वजों की प्रतिष्ठा अब तक अक्षुण्ण चली आ रही है। आपके वंश में बड़े-बड़े विद्वानों ने जन्म लिया था। आपके पूर्वज विद्या से ही नहीं, दुर्लभ राज सम्मान से भी सम्मानित रहें। श्रीमान् पं० ब्रह्मासिंह जी उपाध्याय जो श्री हरिऔध जी के पितृव्य और विद्या गुरु भी थे, इस जिले के परम प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध ज्योतिर्विद हो गये हैं।

श्री हरिऔध के पूर्व पुरुष बदायूँ के रहनेवाले थे। राजरोप भाजन एक कायस्थ परिवार की रक्षा करने के कारण उनको भी राजा के कोप का पात्र बनना पड़ा। अब से चार सौ बरस पहले आपके पूर्वज उसी कायस्थ परिवार के साथ वहाँ सपरिवार निजामाबाद भाग आए थे। निजामाबाद जिला आजमगढ़ में तमसा नदी के किनारे बसा हुआ एक प्रसिद्ध कस्बा है।

श्री हरिऔध के पूर्व पुरुषों में पं० काशीनाथ जी उपाध्याय अपने समय के एक उच्च राज कर्मचारी थे, किन्तु कुछ धार्मिक विरोध उपस्थित होने पर उनको अपना यह प्रतिष्ठित पद त्याग देना पड़ा था। श्रीमान् ब्रह्मासिंह जी उपाध्याय की चर्चा ऊपर की गई है। आप तीन भाई थे। सब में बड़े आप ही थे। आप से छोटे श्रीमान् पं० भोला सिंह जी उपाध्याय श्री हरिऔध जी के पिता और श्रीमती रुक्मिणी देवी माता थीं। आप एक विदुषी महिला थीं। आपकी धर्मनिष्ठा अबतक निजामाबाद में प्रसिद्ध है। श्री हरिऔध जी के जीवन पर आपके पवित्र जीवन का बहुत प्रभाव पड़ा।

श्री हरिऔध जी के पितृव्य निःसन्तान थे। और श्री हरिऔध जी पर उनका विशेष प्रेम था। इन्होंने हरिऔध जी को प्रारम्भिक शिक्षा दी। स्कूली शिक्षा के साथ साथ यह घर पर अपने विद्वान ताऊ जी से संस्कृत भी पढ़ते रहे। सन् १८५६ ई० में इन्होंने प्रथम

श्रेणी में मिडिल की परीक्षा पास की और सरकारी छात्र वृत्ति भी इन्हें मिली। दो वर्ष तक क्वींस कालेज में पढ़ते रहें। पर अस्वस्थता के कारण काशी छोड़नी पड़ी। अब घर पर ही संस्कृत और फारसी प्रारम्भ की साथ ही साथ काव्य, विंगल ग्रन्थ तथा गुरुमुखी भाषा का भी अभ्यास किया।

इनके ताऊ जी को श्रीमद्भागवत से बड़ा प्रेम था। इसके श्लोकों को पारायण करते और उनका अर्थ भी श्री हरिऔध जी को बताते जाते थे। हरिऔध जी की माता पढ़ी-लिखी थीं। उनका प्रिय ग्रन्थ था 'सुख सागर।' जब हरिऔध जी की अवस्था सात आठ साल की थी, तब से वे प्रायः उनसे सुखसागर पढ़वाया करती थीं। श्री कृष्ण का बज से प्रयाण करने का प्रसंग उन्हें विशेष रुचिकर था। उसे पढ़कर वे अविरल अश्रुधारा बहाया करती थीं। इस प्रकार पं० ब्रह्मासिंह जी की भागवत चर्चा के प्रभाव के साथ श्रीमती रुक्मिणी देवी के कोमल चित्त की करुणा-छवि का आवर्षण संयुक्त होकर हरिऔध के हृदय को श्री कृष्ण की ओर उन्मुख करने-वाला सिद्ध हुआ। उस समय श्रीमती रुक्मिणी देवी को यह क्या मालूम रहा होगा कि उन दिव्य करुणा प्रसृत आंसुओं को मोतियों के समान बहुमूल्य समझकर उनका प्रिय बालक उन्हें अपने हृदय के किसी निगूढ़ स्थल में एकत्र करेगा और किसी दिन उन्हीं के द्वारा सजल नयन यशोदा और राधा का चित्र अंकित कर सहृदय संसार को चकित, मुग्ध और विह्वल कर देगा।

काशी से लौटने के पश्चात् १७ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह अनन्त कुमारी देवी से हुआ। इनका ४० वर्ष की अवस्था में १८०५ के लगभग देहावसान हुआ। श्री हरिऔध जी ने फिर विवाह नहीं किया और उस सजल प्रेम का आभास 'प्रिय प्रवास' में दिया।

१६ जून १८८४ ई० को आप निजामाबाद के हिन्दी मिडिल स्कूल में अध्यापक हुए। इस पद पर १० जुलाई १८९० ई० तक रहे। सन् १८८७ ई० में इन्होंने नार्मल भी प्रथम श्रेणी में पास किया था। सन् १८९० ई० में इन्होंने कानूनगो की परीक्षा पास की और १८९० ई० में कानूनगो हो गए। चार वर्षों तक कानूनगो रहने के अनन्तर गिरदावर कानूनगो हुए। सन् १९१८ ई० में सदस

कानूनगो हुए तथा आजमगढ़ ही में रहने लगे। पैंतीस वर्ष सरकारी नौकरी में रहने के पश्चात् १ नवम्बर १९२३ में कार्य मुक्त हुए। फिर हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी के अवैतनिक अध्यापक हुए। जहाँ १९३६ तक काम करते रहे।

श्री हरिऔध जी ने अपने विद्यार्थी जीवन से ही काव्य रचना प्रारम्भ कर दी थी। जब से मिडिल में पढ़ते थे, तभी कबीर के ३३ दोहों पर ७५ कुंडलियां जोड़ी थी।

श्री ब्रह्मा सिंह जी के अतिरिक्त वहाँ के प्रतिष्ठित सिख कवि बाबा सुमेर सिंह साहबजादे का भी श्री हरिऔध जी के जिर्माण में बड़ा हाथ था। जिस साल इन्होंने मिडिल पास किया, उसी साल यह बाबा जी के विशेष सम्पर्क में आये। बाबा जी भारतेन्दु मण्डल के सदस्य थे। बाबा जी ने हरिऔध जी के लिये अपना पुस्तकालय खोल दिया था, यहीं इनका परिचय भारतेन्दु साहित्य एवं 'कवि वचन सुधा' तथा 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' की फाइलों से हुआ और हिन्दी साहित्य की ओर इनकी रुचि अत्यन्त वेग से बढ़ी।

इन्हीं दिनों हरिऔध जी तारिणी चरण मित्र नामक एक बंगाली के सम्पर्क में आये और उन्होंने बंगला सीखा। बंकिम के उपन्यास पढ़ा और उनसे पर्याप्त प्रभावित हुए। पहले 'कृष्ण कान्त बिल' का हिन्दी अनुवाद किया। बाद में 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' नाम के दो मौलिक उपन्यास भी लिखे। जिनमें बोलचाल की सरलातिसरल भाषा का प्रयोग हुआ है। यह हरिऔध जी की प्रथम प्रकाशित कृति है। अपनी भाषा के कारण साहित्यकों का ध्यान अपनी ओर तत्काल आकृष्ट किया था।

उन्नीस वर्ष की आयु में हरिऔध जी ने १९२५ ई० में अपने अध्ययन काल ही में दो पौराणिक नाटक 'रुक्मिणी परिणय' और 'प्रद्युम्न विजय' नाम से लिखे थे जो क्रमशः १८९३, १८९४ में प्रकाशित हुये।

श्री हरिऔध जी ने काव्य रचना ब्रज भाषा में ही प्रारम्भ की थी। बाद में उन्होंने युग के चरण चिन्हों पर चलकर खड़ी बोली में भी काव्य रचना की। उनके ब्रज भाषा काव्यकाल की सीमा १८७६ से १९०७ तक है। यद्यपि वे ब्रज भाषा का स्नेह कभी भी नहीं छोड़ सके। 'रस कलस' उनका सबसे बड़ा ब्रज भाषा का काव्य

ग्रन्थ है। इसकी अधिकांश रचनाएँ १९८७ के पहले की हैं। यह एक रस ग्रन्थ है, जिसमें पर्याप्त नवीनता है।

श्री हरिऔध जी प्रायः ४० वर्ष तक खड़ी बोली की सेवा अगाध रूप से करते रहे। इनके दो महा काव्य 'प्रिय प्रवास' और 'वैदेही वनवास' हिन्दी के लिये अमूल्य देन हैं। 'प्रिय प्रवास' संस्कृत के अतुल्य वर्य वृत्तों में संस्कृत की तत्सम बहुत पदावली में लिखित हिन्दी का सुन्दरतम मधुर काव्य है।

१९२० के पश्चात् हरिऔध जी ने चौपदों की ओर ध्यान दिया। इनमें उर्दू के समान कवि मुहावरों के प्रचुर प्रयोग की ओर दत्तचित्त हुआ है। बोल चाल, चुभते चौपदे, चोखे चौपदे और आधुनिक कवित्त, चौपदों के संग्रह हैं।

हरिऔध जी देश के मौनिहालों को भी नहीं भूलें हैं। उन्होंने छोटे बच्चों के लिए भी बहुत सी कविताएँ लिखी हैं।

हरिऔध जी का भाषा पर हिन्दी के सभी साहित्यकारों से बढ़ कर अधिकार था। वे कठिन से कठिन हिन्दी लिख सकते थे—देखिये वेनिस का बांका और 'प्रिय प्रवास' सरल से सरल हिन्दी पर उनका अधिकार था। देखिये 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' तथा बालकों के लिए लिखी गई कवितायें। वे मुहावरेंदार भाषा के माहिर थे—देखिये उनके चौपदे। वे ब्रज भाषा और खड़ी बोली के समान रूप से श्रेष्ठ कवि थे। वे जहाँ मुक्तकों के सम्राट थे, प्रबन्ध की संयोजना में परम पटु थे। हिन्दी जगत ने दो बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति बनाकर उनका समादर किया था। 'प्रिय प्रवास' पर उन्हें हिन्दी का श्रेष्ठतम पुरस्कार अगला प्रसाद पारितोषिक मिल चुका है।

आरा नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें अम्बिनन्दन ग्रन्थ प्रदान किया था। साहित्य सम्मेलन ने उन्हें साहित्य वाचस्पति तथा भारत धर्म महामण्डल ने साहित्य रत्न की उपाधि से विभूषित किया था। हिन्दी संसार तो उन्हें 'कवि सम्राट' नाम से सम्मानित ही करता है।

महाकवि श्री हरिऔध का देहावसान ६ मार्च सन १९४७ को ८२ वर्ष के परिपक्व वय में होली के दिन उनके घर पर हुआ।

—केशवदेव उपाध्याय

प्रभु-प्रताप

घूमते हैं रात दिन ।
है उजली औ मलिन ॥
जलती है अगिन ।
से बढ़कर कठिन ॥
हूल केलि-कलाप बल ।
र का मंगल सकल ॥ १ ॥

थ क्या करता नहीं ।
कभी उल्टा नहीं ।
का कि वह हरता नहीं ।
कि वह भरता नहीं ॥
निराली हैं सभी ।
नहीं पाता कभी ॥ २ ॥

नगर देता उजाड़ ।
बड़े ऊँचे-पहाड़ ॥
लेता है उखाड़ ।
को सकता बिगाड़ ॥

कौंपते[!] सब देखते आतंक से हैं रात दिन ।
मोम करता है उसे, है जो कि पत्थर से कठिन ॥ ३ ॥

पथ-प्रमोद

देखते हैं राज पाकर हम जिसे करते बिहार ।
मांगता फिरता रहा कल भीख वह कर को पसार ॥
एक टुकड़े के लिये जो घूमता था द्वार द्वार ।
आज धरती है कँपाती उसके धौंसे की धुकार ॥

नित्य ऐसी सैकड़ों लीला किया करता है वह ।
रंक करता है कभी सिर पर मुकुट धरता है वह ॥ ४ ॥

जड़ जमा कितने उजड़तों को बसाता है वही ।
बात रख कितने बिगड़तों को बनाता है वही ॥
गिर गयों को कर पकड़ करके उठाता है वही ।
भूलतों को पथ बहुत सीधा बताता है वही ॥
इस धरा पर सुन सका कोई नहीं जिसका कही ।
उस दुखी की सब व्यथा सुनता समझता है वही ॥ ५ ॥

डाल सकता शीश पर जिसके पिता छाया नहीं ।
गोद माता की खुली जिसके लिये पाया नहीं ॥
है पसीजी देखकर जिसकी व्यथा जाया नहीं ।
काम आती दीखती जिसके लिये काया नहीं ॥
बाँह ऐसे दीन की है प्यार से गहता वही ।
सब जगह सब काल उसके साथ है रहता वही ॥ ६ ॥

वह अंधेरी रात जिसमें है घिरी काली घटा ।
वह बिकट जंगल, जहाँ पर शेर रहता है डटा ॥
वह महा-मरघट, पिशाचों का जहाँ है जम घटा ।
वह भयंकर ठाम जो है लोथ से बिल्कुल पटा ॥
मत डरो ये कुछ किसी का कर कभी सकते नहीं ।
क्या सकल संसार पाता है पड़ा सोता कहीं ॥ ७ ॥

प्रभु प्रताप

जिस महा मरु-भूमि से कढ़ती सदा है लूलपट ।
वारि की धारा मधुर रहती उसी के है निकट ॥
जिस विशद जल-राशि का है दूरतक मिलता न तट ।
है उसीके बीच हो जाता धरातल भी प्रगट ॥
वह कृपा ऐसी किया करता है कितनी ही सदा ।
लाभ जिससे हैं उठाते सैकड़ों जन सर्वदा ॥ ८ ॥

जिस अँधेरे को नहीं करता कभी सूरज शमन ।
उस अँधेरे को सदा करता है वह पल में दमन ॥
भूल करके भी किसी का है जहाँ जाता न मन ।
वह बिना आयास के करता वहाँ भी है गमन ॥
देवतां के ध्यान में भी जो नहीं आता कभी ।
उस खेलाड़ी के लिये हस्तामलक है वह सभी ॥ ९ ॥

जगमगाती व्योम मण्डल की विविध ताराबली ।
फूल फल सब रंग के खिलती हुई सुन्दर कली ॥
सब तरह के पेड़ उनकी पत्तियाँ साँचे ढली ।
रँग बिरंगे पंख की चिड़ियां प्रकृति हाथों पली ॥
आँख वाले के हृदय में हैं बिठा देती यही ।
इन अनूठे विश्व-चित्रों का चितेरा है वही ॥ १० ॥

देख जो पाया 'अरोराबोरिएलिस' का समा ।
रंग जिसकी आँख में है मेघमाला का जमा ॥
जो समझ ले व्यूह तारों का अधर में है थमा ।
जो लखे सब कुछ लिये है घूमती सारी क्षमा ॥
कुछ लगाता है वही करतूत का उसकी पता ।
भाव कुछ उसके गुणों का है वही सकता बता ॥ ११ ॥

पद्य-प्रमोद

है कहीं लाखों करोड़ों कोस में जल ही भरा ।
है करोड़ों मील में फैली कहीं सूखी धरा ॥
है कहीं पर्वत जमाये दूर तक अपना परा ।
देख पड़ता है कहीं मैदान कोसों तक हरा ॥

बह रहीं नदियाँ कहीं, हैं गिर रहे भरने कहीं ।
किस जगह उसकी हमें महिमा दिखाती है नहीं ॥१२॥

जी लगाकर आँख की देखो क्रिया कौतुक भरी ।
इस कलेजे की बनावट की लखो जादूगरी ॥
देख कर मेजा बिचारो फिर विमल वाजीगरी ।
इस तरह सब देह की सोचो सरस कारीगरी ॥
फिर बता दो यह हमें संसार के मानव सकल ।
इस जगत में है किसी की तूलिका इतनी प्रबल ॥१३॥

जब जनमने का नहीं था नाम भी हमने लिया ।
था तभी तैयार उसने दूध का कलसा किया ॥
दूर की बहु आपदायें, बुद्धि बल वैभव दिया ।
की भलाई की न जाने और भी कितनी क्रिया ॥
तीनपन बीते मगर तब भी तनिक चेते नहीं ।
हैं पतित ऐसे कि उसका नाम तक लेते नहीं ॥१४॥

हे प्रभो ! है भेद तेरा वेद भी पाता नहीं ।
शेष, शिव, सनकादि को भी अंत दिखलाता नहीं ॥
क्या अजब है जो हमें गाने सुयश आता नहीं ।
व्योम तल पर चीटियों का जी कभी जाता नहीं ॥
मन मनाने के लिये जो कुछ ढिठाई की गई ।
कीजिये उसको क्षमा, है बात जो अनुचित हुई ॥१५॥

लोकसत्ता

[चौदें]

काम बनता निकाम सुन्दर क्यों ।

कान्ति कमनीयता स्वयं खोती ॥

विधु ललाता ललाम होने को ।

जो न प्रभु की ललामता होती ॥ १

मोहती तरु हरीतिमा कैसे ।

क्यों गगन नीलिमा लुभा लेती ॥

मंजु तम श्यामघन न बन पाते ।

श्याम रुचि जो न श्यामता देतो ॥ २ ॥

क्यों विभाकर विभा बलित बनता ।

दामिनी क्यों चमक-दमक पाती ॥

तारकावलि न जगमगा सकती ।

जागती ज्योति जो न जग जाती ॥ ३ ॥

तो न होती ललित नवल-लतिका ।

तो न बनती कलित कुसुम क्यारी ॥

तो न सरसिज सुहावने लगते ।

जो छिटिकती नहीं छटा न्यारी ॥ ४ ॥

खग रुचिर पख, तितलियों का तनु ।

इन्द्रधनु रंग किस तरह लाता ॥

है जगत रंग में रंगा जिसके ।

यदि वही रंगतें न दिखलाता ॥ ५ ॥

पद्य-प्रमोद

चारुता दे सुचारु चन्दन सी ।

किस तरह दारु दारुता खोती ॥

जो न मिलती सुरभि सुरभि-खनि से ।

सौरभित क्यों मलय-पवन होती ॥ ६ ॥

माधुरी की न माधुरी रहती ।

हो न सकता मधुर-मधुप कलरव ॥

माधवी मधुरिमा न जो होती ।

मधु न पाते कदापि मधु माधव ॥ ७ ॥

सुध सदाकर किसी सुधा-निधि की ।

जो सुधा में प्रकृति नहीं सनती ॥

क्यों सुधाधर सरस सुधा स्रवता ।

क्यों सुधामय वसुंधरा बनती ॥ ८ ॥

तो न रहता रसिक जनों का रस ।

मेघ रस किस तरह बरस पाता ॥

जो न होता सकल रसों का रस ।

तो सरस क्यों सरस कहा जाता ॥ ९ ॥

कह सके बुध जिसे 'रसो वैसः' ।

जो न उनकी रसालता होती ॥

तो रसोपल न रस उपल बनते ।

निज सरसता सकल रसा खोती ॥ १० ॥

मनोव्यथा

[द्विद]

ऐ प्रेन के पयोनिधि भवरुज पियूष प्याले ।

उपताप ताप पातक परिताप तम उँजाले ॥१॥

प्रतिदिन अनेक पीड़ा पीड़ित बना रही है ।

कब तक रहें निपीड़ित प्रभु पद्मपाणि पाले ॥२॥

चलती नहीं अबल की कुछ सामने सबल के ।

क्यों-आपकी सबलता सँभली नहीं सँभाले ॥३॥

जी-जान से लिपट कर हम टालते नहीं कब ।

संकट समूह संकट मोचन टले न टाले ॥४॥

सब रंग ही हमारा बदरंग हो रहा है ।

पर रंग में हमारे प्रभु तो ढले न ढाले ॥५॥

क्यों काल कालिमायें करती कलंकिता हैं ।

दिल के कलंक भंजन हम थे कभी न काले ॥६॥

है हो रही छलों से उसकी टपक छ गूनी ।

क्यों दिल छिले हुए के-देखे गये न छाले ॥७॥

दुख दे कभी किसी को होते नहीं सुखी हम ।

सुख-निधि पड़े रहे क्यों सुख के सदैव लाले ॥८॥

हैं क्यों न दूर होते पातक अपार मेरे ।

वे आपके निरालेपनसे नहीं निराले ॥९॥

जो काम ही हमारा होता तमाम है तो ।

कमनीयता कहाँ है कमनीय कान्ति वाले ॥१०॥

पद्य-प्रमोद

भारत-गीत

यह भारत भूमि हमारी ।

है तीन लोक से न्यारी ॥

है हिमगिरि गौरव दाता । मलयानिल चवँर हिलाता ।

घन मुक्तमाल पहिनाता । है जलधि चूम पग जाता ।

जग ने आरती उतारी ॥१॥

है यहीं ज्योति वह फूटी । जिससे अँधियारी टूटी ।

है यहीं मिली वह बूटी । जिससे जग जड़ता छूटी ।

मानव रुचि गई सँवारी ॥२॥

है यहीं सुरसरी धारा । जिसने पतितों को तारा ।

है यहीं नगर वह न्यारा । जो है विमुक्ति का द्वारा ।

हैं यहीं सिद्धियाँ सारी ॥३॥

कपिलादिक से विज्ञानी । शिवि बलि दधीच से दानी ।

शुकदेव बुद्ध से ज्ञानी । सुरसरि सुत से सेनानी ।

हरि यहीं हुए तनधारी ॥४॥

कमनीय प्रकृति कर पाले । रुचि रुचिर सुधा के प्याले ।

सब सुगुण सुतरु के थाले । मानवता के मत वाले ।

हैं यहीं विपुल नर-नारी ॥५॥

कर कान्तिमान मणि मोती । है यहीं कान्त ऋतु होती ।

है यहीं वह सरस सोती । जो प्रकृति क्लान्ति है खोती ।

कर उसे मधुर मृदु प्यारी ॥६॥

हैं यही हुए गिरि-धारी । जलनिधि बन्धन अधिकारी ।

वसुधा गोदोहन कारी । रवि शशि समान नभ चारी ।

इस अरवनी की बलिहारी ॥७॥

भारत गीत

जय जय जय भारत माता ।

सुर वंदित नमित विधाता ।

हिम मेरु है मुकुट न्यारा । बह रही सुरसरी धारा ।

कटिबन्ध विन्ध्य गिरिप्यारा । पग है विधौत निधि द्वारा ।

मणि कांचन मण्डित गाता ॥१॥

रवि ज्योति जाल उज्वलिता । कमनीय कौमुदी कालता ।

ललिताभ सलिल धर ललिता । बहु धवलित धाम धवलिता ।

अति लोकोत्तर अवदाता ॥२॥

पारन विभूतिदा धनी । सरसा सुरपुर से दूनी ।

वर विभवमयी चौगूनी । अलका सेसल्लवि छगूनी ।

सुजला सुफला विख्याता ॥३॥

जन तीस कोटि की जननी । जगविदिता वीर-प्रसविनी ।

कलकीर्ति कुसुम संचयनी । अवनीतल सकल विजयिनी ।

सुर सुरपति सुरपुर त्राता ॥४॥

मुक्तिदा अनिर्वचनीया । महती महिमा महनीया ।

कामदा परम कमनीया । भजनीय सतत यजनीया ।

नरनिकर अभय वरदाता ॥५॥

महती महा पुनीता मधुरा मनोहरा है ।

वसुधा ललामभूता भारत वसुंधरा है ॥ १ ॥

नव शस्य-शालिनी है सुप्रसून मालिनी है ।

विदिता रसालिनी है सुप्रसिद्ध उर्वरा है ॥ २ ॥

सर्वाङ्ग-सुन्दरी है प्रियकारिता भरी है ।

सुखशान्ति सहचरी है सुविभूति निर्भरा है ॥ ३ ॥

गुरु गिरि विमंडिता है शुभ सरि समन्विता है ।

बहु सर अलंकृता है सरसा ससागरा है ॥ ४ ॥

पद्य-प्रमोद

वरबोध विधुरजनि है सुविचार चारु खनि है ।

मति मानता जननि है शुचिरुचि सहोदरा है ॥१॥

कमनीय कृतिवती है लसिता यती सती है ।

वर वीरता व्रती है गति मति अगोचरा है ॥ ६ ॥

गौरव गरीयसी है महिमा महीयसी है ।

विपुलावलीयसी है उज्ज्वल कलेवरा है ॥ ७ ॥

आमोद मोदिता है परमा प्रमोदिता है ।

विभुता विनोदिता है प्रथिता धनुर्धरा है ॥ ८ ॥

सब सिद्धिदायिका है बाँछित विधायिका है ।

संस्मृति सहायिका है अनुरक्त श्रुतिवरा है ॥ ९ ॥

अति दिव्यतम त्रिया है भव भव्यतर क्रिया है ।

स्वाधीनता प्रिया है कर्तव्य तत्परता है ॥ १० ॥

महती महा पुनीता मधुरा मनोहरा है ।

वसुधा ललामभूता भारत वसुंधरा है ॥ १ ॥

लसती कहीं लता है फूले कहीं कमल हैं ।

कल काँच सा कहीं पर निर्मल सलिल भरा है ॥ २ ॥

मनमोहता कहीं है कलरव बिहंग कुल का ।

औ सोहता कहीं पर पादप हरा भरा है ॥ ३ ॥

बहती मलय पवन है मुक्तानिकेत घन है ।

नन्दन समान बन है मणिमय यहाँ धरा है ॥ ४ ॥

हो गौरवित यहीं के गौरव समूह द्वारा ।

जग के समस्त गिरिका गिरिराज सिर धरा है ॥ ५ ॥

है मानसर यहीं पर मण्डित मराल माला ।

कश्मीर महि यहाँ की कुसुमित कलेवरा है ॥ ६ ॥

आये बसंत सुनकर पिक-काकली कलित तर ।

कर में यहीं कुसुमशर ले काम अवतरा है ॥ ७ ॥

भारत गीत

माधुर्य्य का यहीं पर मण्डप मनोज्ञतम है ।
सौंदर्य्य का यहीं पर अति चारु चौतरा है ॥ ८ ॥
पाते यहीं भवन हैं बहु भव्य, भारती का ।
मिलता यहीं रमा का मंजुल महल सरा है ॥ ९ ॥
बहती मिली यहीं पर धारा सरस सुधा की ।
है कल यहीं कलाधर राका रुचिर तरा है ॥ १० ॥

महती विमुग्धतामय मधुरा मनोहरा है ।
वसुधा विभूतिपूता भारत वसुंधरा है ॥ १ ॥
बहुवंश में यहाँ ही बुधवृन्द हैं विलसते ।
वर वीर धीर का भी बँधता यहीं परा है ॥ २ ॥
पाये गये कहाँ पर ऐसे पुनीत मानव ।
पाहन अपूत जिनका पग पूत छू तरा है ॥ ३ ॥
तन मन सहित सकल धन कर कान्त पर निछावर ।
मुखड़ा कुलांगना का होता यहीं हरा है ॥ ४ ॥
पतिदेवता कहाँ पर ऐसी क्रिसे मिली हैं ।
यम आप देख जिनकी तेजस्विता डरा है ॥ ५ ॥
विद्या पराऽपरा की गुरुता गरीयसी का ।
सिर पर यहीं मनुज के सेहरा गया धरा है ॥ ६ ॥
अब भी सुरुचि सरलता शुचिता मुशीलता का ।
फहरा रहा यहीं पर कमनीय फर हरा है ॥ ७ ॥
लोकोपकार अथवा उद्धार धर्म के हित ।
मरना समझ अमरता मानव यहीं मरा है ॥ ८ ॥
विधि साथ कर यहीं पर सब कामना समर्पित ।
संसार सार विभु को वर भक्ति ने वरा है ॥ ९ ॥
आलोकमय बना के मानव-समूह मानस ।
परलोकन्तम यहीं के आलोक ने हरा है ॥ १० ॥

कामना

सदा भारत-भू फूले फले ।

सफल कामनायें हों उसकी मिले सफलता गले ॥
पुलकित रहें प्रिय सुअन प्रतिदिन सुख पालने में पले ।
भव-हित-रत भावुव मानस में भरे भाव हों भले ॥
दुख दल दलित रहें, कोई खल कर खलता न खले ।
छूटे क्षोभ, लुद्रजन को भी छली न छल कर छले ॥
सकल समल मन परम विमल हो छूटे तन मल मले ।
धाम धाम हो धूम धाम ध्वनि अधम अधमता टले ॥१॥

भारत भूल में न पड़ भूले ।

क्या फल होगा, अंगारों को फूल समझ कर फूले ॥
लिख न सकेंगे लेख लेखनी कर में लेकर लूले ।
कनक न होवेंगे पुआल के पीले पीले पूले ॥
मलय समीर समान मनोरम बनते नहीं बगूले ।
वही नहीं लू कलित कुसुम की मत्तकरी वर बू ले ॥
काले को कोई क्यों कामिनि कल कुंतल कह छू ले ॥
परम अकाम अंक कैसे कामद काम बधू ले ॥२॥



विद्या

[द्विपद]

इस चमकते हुए दिवाकर से ।
रस बरसते हुए निशाकर से ॥ १ ॥
जो अलौकिक प्रकाश वाली है ।
बहु सरसता भरी निराली है ॥ २ ॥
वह जगद्वंदर्नाय विद्या है ।
अति अनूठा प्रभाव जिसका है ॥ ३ ॥
ज्योति रवि की जहाँ नहीं जाती ।
यह वहाँ भी विकास है पाती ॥ ४ ॥
जो शशी को सरस नहीं कहते ।
हैं इसीसे अपार रस लहते ॥ ५ ॥
यह सुधा है, अमर बनाती है ।
यह सुयश-वेलि को उगाती है ॥ ६ ॥
हो गये व्यास, बालमीक अमर ।
आज भी है सुकीर्ति भूतल पर ॥ ७ ॥
कामदा यह सुकल्प-लतिका है ।
शान्ति-दात्री विचित्र बटिका है ॥ ८ ॥
कालिदासादि कामुकों का दल ।
पा चुका है अनन्त इच्छित फल ॥ ९ ॥

पद्य-प्रमोद

शान्ति इससे शुकादि ने पाई ।

दीप्ति जिनकी दिगन्त में छाई ॥१०॥

यह अमर सरि पवित्र धारा है ।

जिसने जाबालि को उधार है ॥११॥

नीच को ऊँच यह बनाती है ।

काठ में भी सुफल फलाती है ॥१२॥

था विदुर का कहाँ नहीं आदर ।

कौन कहता उन्हें न नयनागर ॥१३॥

सद्गुणों का प्रदीप्त पूषण था ।

वह विबुद्ध-मंडली-विभूषण था ॥१४॥

शक्ति है अति अपूर्व विद्या की ।

धूम सी है विचित्र क्षमता की ॥१५॥

विश्व के बीच वस्तु है जितनी ।

एक में भी न शक्ति है इतनी ॥१६॥

स्वच्छ नीले अनन्त नभ-तल का ।

सूर्य, बुध, सोम, शुक्र, मंगल का ॥१७॥

इन चमकते हुए सितारों का ।

पूँछ वाले अनन्त तारों का ॥१८॥

भेद सब यह हमें बताती है ।

मञ्जु दिल की कली खिलाती है ॥१९॥

सैकड़ों कोस एक कोस बना ।

रेल की है अजब हुई रचना ॥२०॥

जो समाचार साल में आता ।

तार उसको तुरंत है लाता ॥२१॥

विद्या

है रसायन की वह सुचारु क्रिया ।

सब धरा-गर्भ जिसने छान लिया ॥२२॥

बन गयी हैं विचित्र नौकायें ।

जो जलधि-गर्भ में चली जायें ॥२३॥

था असम्भव अनन्त में उड़ना ।

युक्ति से दिव्य व्योमयान बना ॥२४॥

हैं नये फूल फल उपज पाते ।

अब मृतक हैं सजीव बन जाते ॥२५॥

देखने भालने लगे अंधे ।

पुतलियों कर रही हैं सब धंधे ॥२६॥

बात बहरे समस्त सुनते है ।

वस्त्र बंदर अनेक बुनते है ॥२७॥

बोलने चालने लगे गूंगे ।

बन गये रंग रंग के मूंगे ॥२८॥

दूरबीनें, कलें, बनीं ऐसी ।

हैं न देखी सुनी गयी जैसी ॥२९॥

किन्तु यह सब कमाल है किसका ।

गुण-मयी एक दिव्य विद्या का ॥३०॥

जो हुए वेद-मन्त्र के द्रष्टा ।

हो गये उपनिषद् के जो स्तुता ॥३१॥

आज भी उन महर्षियों का ख ।

है धरातल विबुध गिरा गौरव ॥३२॥

तर्क, गौतम, कणाद, जैमिनि का ।

कृत्य पण्डित्य-पूर्ण पाणिनि का ॥३३॥

शंकराचार्य का स्वमत-मण्डन ।

सूरि श्रीहर्ष का प्रबल खंडन ॥३४॥

पद्य-प्रमोद

आज भी है अजस्र काम आता ।

है जगत में प्रकाश फैलाता ॥३५॥

यह सभी है विभूति विद्या की ।

है उसीकी सुकीर्ति यह बाँकी ॥३६॥

माघ, भवभूति का सुधा-वर्षण ।

भारवी का अपूर्व संभाषण ॥३७॥

यह सदा ही श्रवण कराती है ।

दिव्य कल-कंठता दिखाती है ॥३८॥

है जननि के समान क्षेमकरी ।

है पिता के समान प्रीतिभरी ॥३९॥

है रमणी सम सदा रमण करती ।

कीर्ति को है दिगन्त में भरती ॥४०॥

धन रहित के लिये महा धन है ।

यह कुजन के लिये सुशासन है ॥४१॥

है निबल के लिये अलौकिक बल ।

है समुद्योग का समुत्तम फल ॥४२॥

है विमल तेज तेज-हीनों को ।

रत्न की मंजु खानि, दीनों को ॥४३॥

है जरा-ग्रस्त के लिये लकुटी ।

व्यग्रजन के निमित्त शान्ति कुटी ॥४४॥

यह विपत्त में विरामदायिनि है ।

क्षान्ति में मोद की विधायिनि है ॥४५॥

सहचरी है अनिन्द्य कर्मों में ।

है व्यवस्था विशुद्ध धर्मों में ॥४६॥

यह निरवलम्ब का सहारा है ।

तप्त उरकी सवारि-धारा है ॥४७॥

विद्या

कालिमा की कलिन्द-नन्दिनि है ।

पाप के पुंज की निकन्दिनि है ॥४८॥

है कलित कंठ कोकिला ऐसी ।

गुणमयी है मरालिका जैसी ॥४९॥

मोर के पक्ष लों सुचित्रित है ।

यंत्र की भाँति यह नियंत्रित है ॥५०॥

है विकच-मल्लिका विनोद भरी ।

पल्लवित वेलि है विमुग्ध करी ॥५१॥

है हृदय-तम विनाशिनी सुप्रभा ।

है सदाचार की विचित्र सभा ॥५२॥

है कला उक्ति-युक्ति में ढाली ।

है तुला बुद्धि तौलने वाली ॥५३॥

स्वर्ग की संर यह कराती है

मंजु अलकापुरी दिखाती है ॥५४॥

है सजाती नवल जलद-माला ।

है िलाती पियूष का प्याला ॥५५॥

है सुनाती मधुर भ्रमर-गूँजन ।

पक्षि-कुल का अलाप कल-कूजन ॥५६॥

है दिखाती हरी भरी ढाली ।

फूल-फल से लदी सुछवि वाली ॥५७॥

है जहाँ पर त्रिविध पवन बहती ।

है जहाँ मत्त कोकिला रहती ॥५८॥

जो सदा सौरभित सुपुष्पित है ।

जो सुक्रीड़ित व मंजु मुखरित है ॥५९॥

इस तरह के अनेक उपवन में ।

बाग में कुञ्ज-पुञ्ज में, बन में ॥६०॥

पद्य-प्रमोद

है हमें यह बिहार करवाती ।

है छटा का रहस्य बतलाती ॥ ६१ ॥

स्वच्छ जल-राशिमय सरोवर पर ।

हिम-धवल कर प्रदीप्त गिरिवर पर ॥ ६२ ॥

यह हमें है सप्रेम ले जाती ।

है सुखवि का विकास दिखलाती ॥ ६३ ॥

बुद्धि जाती जहाँ न मनजाता ।

जो सदा है अचिन्त्य कहलाता ॥ ६४ ॥

जो न मिलता हमें विचारों से ।

हैं न पाते जिसे सहारों से ॥ ६५ ॥

है उसे भी यही लखा देती ।

थाह उसका है कुछ यही लेती ॥ ६६ ॥

विश्व-विद्या-करों विशेष पला ।

है इसीसे हुआ अशेष भला ॥ ६७ ॥

है अकथ औ असीम-गुण-माला ।

है उसे कौन आँकने वाला ॥ ६८ ॥

है यहाँ पर कहा गया जितना ।

वह अखिल के समीप है कितना ॥ ६९ ॥

कुछ नहीं है, महा अकिंचित-कर ।

जिस तरह बूँद और रत्नाकर ॥ ७० ॥

इसलिये 'नेति' 'नेति' कहते हैं ।

मुग्ध होते हैं मौन गहते हैं ॥ ७१ ॥

वेद हैं ।

[छप्पै]

सब विद्या के मूल, जनक हैं सकल कला के ।
विविध-ज्ञान आधार, रसायन हैं अचला के ॥
सुरुचि विचार विवेक विज्ञता के हैं आकर ।
हैं अपार अज्ञान तिमिर के प्रखर प्रभाकर ॥
परम खेलाड़ी प्रभु करों के लोकोत्तर गेंद हैं ।
भव-सागर के सेतु ए जगत उजागर वेद हैं ॥ १ ॥

जब सारा संसार अचेतन पड़ा हुआ था ।
निज पावों पर जीव नहीं जब खड़ा हुआ था ॥
रहा जिन दिनों अंधकार भूतल पर छाया ।
जब न ज्ञान रवि-बिम्ब निकलने भी था पाया ॥
तभी प्रगट हो जिन्होंने बतलाये सब भेद हैं ।
वे ही सारे लोक के दिव्य विलोचन वेद हैं ॥ २ ॥

जिनके शिर पर मुकुट जगत गुरुता का राजे ।
जिनके मुख पर लोक चकित कर ज्योति विराजे ॥
जिनके कर में भुक्ति-मुक्ति का सूत्र लसा है ।
जिनका सारा अंग अलौकिक सुरभि बसा है ॥
जिनके पूत प्रभाव से मिटे भव-जनित खेद हैं ।
सकल अपावनता दमन ए जग-पावन वेद हैं ॥ ३ ॥

कामवेनु सी कामद उनकी रुचिर ऋचा है ।
उनका पूत प्रसंग निराली सुधा सिंचा है ॥
वे हैं चिंतामणि समान चिन्तित फल दाता ।
उनसे सब कुछ जगत कल्पतरु लौ है पाता

पद्य-प्रमोद

परम अगम भव-पंथ चल जोजन डूबे स्वेद हैं ।
उनको मलया-सीर लौं महामोद-प्रद वेद हैं ॥ ४ ॥

वे बहु साधन विटप वृन्द के हैं वर थाले ।
सकल यम नियम गये गोद में उनकी पाले ॥
श्रद्धा और विश्वास हुए लालित उन से ही ।
विमल सरोवर भक्ति कमलिनी के हैं वे ही ॥
अपरा विद्या मेदिनी मूल-भूत इव मेद हैं ।
सुरभि परा विद्या सुमन बुध जन वंदित वेद हैं ॥ ५ ॥

इनमें से ही ज्योति जगमगा कर वह फूटी ।
जिससे विकसित हुई सभ्यता जड़ता छूटी ।
उसकी ही अभिनन्दनीय कल-कान्ति सहारे ।
दमक रहे हैं सकल जगत मत के दृग तारे ॥
आंख डाल कर देखिये मिलते अल्प विभेद हैं ।
सकल धर्म सिद्धान्त के अवलम्बन ए वेद हैं ॥ ६ ॥

बुद्ध देव का परम दिव्य दीपक अवलोका ।
ईसा का बहु विदित दमकता लंप विलोका ॥
देखी अति कमनीय शमा जर-दशत जलाई ।
निपट कान्त कन्दील मुहम्मद की दिखलाई ॥
पर विकाश की दृष्टि से ए सर्वथा अभेद हैं ।
करते आलोकित इन्हें आलोकाकर वेद हैं ॥ ७ ॥

चाहे त्रिपिटक निज विभूति उनको बतलावें ।
चाहे उनको जैन ग्रंथ निज वस्तु बतावें ॥
निज अनुभव फल उन्हें क्यों न इनजील बखाने ।
उनको जिन्द कुरान भले ही स्वविभव माने ॥

वेद हैं

किन्तु सत्य हम कथन कर नहीं करते विच्छेद हैं ।
सार्वभौम सिद्धान्त के आदि प्रवाक वेद हैं ॥ ८ ॥

प्लेतो कोमत का अलाप अनुपम सुन पाया ।
कंट के परम ललित लयों ने बहुत रिझाया ॥
सुपनहार के मधुर तान ने हृदय लुभाया ।
स्पर्श के अति सरस राग ने मुग्ध बनाया ॥
दान्ते के कल गीत से मिटते मानस छेद हैं ।
पर स्वर से जाना, उन्हें स्वरित बनाते वेद हैं ॥ ९ ॥

ऐसा व्यक्ति विशेष सभी मत है बतलाता ।
जिसके माने बिना मुक्ति कोई नहीं पाता ॥
किन्तु एक वैदिक मत ही ऐसा है प्यारे ।
जिसमें नर तरता है निज व्यक्तित्व सहारे ॥
रख सुकर्म रत फलों में उपजाते निर्वेद हैं ।
केवल ज्ञान-प्रभाव से मुक्ति दिलाते वेद हैं ॥ १० ॥

किसी जाति मत पंथ का मनुज कोई होवे ।
जो प्रभु पद को गहे मलिनता चित की खोवे ॥
सदाचार रत रहे पाप तज जग हित साधे ।
तो वह होगा मुक्त बिना प्रति भू आराधे ॥
गिरा परम गंभीर से करते भ्रम उच्छेद हैं ।
मुक्त-कंठ से बात यह कहते केवल वेद हैं ॥ ११ ॥

जब उपासनायें प्रतीक हैं काम चलावी ।
नर उर में विज्ञान ज्योति है जब जग जाती ॥
मध्य दशाश्रों सहित दशा यह आदिम अंतिम ।
जिनमें पड़ कर हुई मनुज की महिमा अप्रतिम ॥

पद्य-प्रमोद

उनके अति व्यापक फलद कहे भेद उपभेद है ॥
क्योंकि सर्वदर्शी विशद सर्व ज्ञानमय वेद हैं ॥१२॥

किसी ग्रन्थ मत पंथ धर्म साधन का खंडन ।
वे नहिं करते मिले क्योंकि वे हैं महि मंडन ॥
वे हैं उनके जनक विकासक जीवन दाता ।
वे तब थे जब था न किसी का नाम सुनाता ॥
इसी लिये यद्यपि नहीं वे रखते संभेद हैं ।
तो भी उन पर प्रेम जल वर्षण करते वेद हैं ॥१३॥

पंचभूत जल पवन आदि ऊपर है जैसा ।
प्राणिमात्र अधिकार वेद पर भी है वैसा ॥
उनकी ऊँची आँख नहिं कहीं पर है अड़ती ।
वह समान सब जाति देश पर ही है पड़ती ॥
सदा तुल्य उनके लिये यूरप अन्तर्वेद हैं ।
सकल जगत हित में निरत विश्व प्रेम-रत वेद हैं ॥१४॥

थोड़ा अन्तर भ्रातृ-भाव में है रह जाता ।
वैदिक मत है इसीलिये यह पाठ पढ़ाता ।
मानव ही को नहीं सभी जीवों को मानो ।
निज आत्मा समान आत्मा सब की जानो ॥
वंश जाति गत दृष्टि का वे करते उद्भेद हैं ।
है कुटुम्ब वसुधा सकल यह बतलाते वेद हैं ॥१५॥

आये दिन ए शैव वैष्णव रगड़े कैसे ।
धर्म सभा के औ समाज के भगड़े कैसे ॥
हमें बता दो सौर शक्ति क्यों हैं लड़ पड़ते ।
क्यों बेदान्ती लोग कुछ दृगों में हैं गड़ते ॥

वेद हैं

लोग परस्पर किस लिये करते वृथा कुरेद हैं ।
जब कि धर्म के विषय में मान्य सभी के वेद हैं ॥१६॥

हैं विचित्रतायें विचार रुचि की स्वाभाविक ।
किन्तु न होगा उचित काक बन जावे यदि पिक ॥
भिन्न भिन्न मत गत विचित्रता ही है जीवन ।
यदि समाज के लिये बने वह जड़ी सजीवन ।
किन्तु लोक-हित हृदय में जो जन करते छेद हैं ।
वे न जानते मर्म हैं न तो मानते वेद हैं ॥१७॥

विविध गठन और रूप रंग जिनका हैं पाते ।
वे बाजे हैं सदा मिलाने से मिल जाते ॥
रखते हुए स्वकीय भाव सारा ढँग न्यारा ।
वे मिलते हैं एक देह-व्यापी स्वर द्वारा ॥
बने भले ही नित रहें जितने उचित प्रभेद हैं ।
पर वे हृदय मिले रहें जिनमें बसते वेद हैं ॥१८॥

गजरां में है विविध फूल को सूत्र मिलाता ।
गहनों में है विविध नगों का मेल दिखाता ॥
वे सब न्यारा रूप रंग अपना नहिं खोते ।
पर तो भी हैं एक सिद्धि के साधन होते ॥
यों ही शुभ उद्देश्य से, हम पूछते सखेद हैं ।
क्या वे मिल सकते नहीं जिन्हें मिलाते वेद हैं ? ॥१९॥

मिल सकते हैं, जो न भूल अपने को जावें ।
करें सत्य को प्यार कलह को मार भगावें ॥
धर्म ओट में कभी न जी का मैल निकालें ।
रखें प्रेम का मान सुजनता को प्रति पालें ॥

पद्य-प्रमोद

पर को खेदित कर न जो रहते स्वयं अदेख है ।
मुख उन का संसार में उज्ज्वल करते वेद हैं ॥२०॥

प्रभो ! प्रभा वैदिक मत की भूतल में फैले ।
लघु बातों के लिये न होवें मानस मैले ॥
सब सच्चे जी से कुटुम्ब बसुधा को माने ।
विश्व-प्रेम के महामंत्र की महिमा जाने ॥
हुए वितण्डावाद में जिनके बाल सुपेद हैं ।
वे अभिज्ञ हों, देवता शान्ति मंत्र के वेद हैं ॥२१॥

प्रेमधारा

[छप्पै]

उसका ललित प्रवाह लसित सब लोकों में है ।
उसका रव कमनीय भरा सब ओकों में है ॥
उसकी क्रीड़ा-केलि कल्प-लतिका सफला है ।
उसकी लीला लोल लहर कैवल्य कला है ॥
मूल अमरपुर अमरता सदा प्रेमधारा रही ।
वसुंधरा तल पर वही लोकोत्तरता से बही ॥ १ ॥

रवि किरणें हैं इसी धार में उमग नहाती ।
इसी लिये रज तक को हैं रंजित कर जाती ॥
कला कलानिधि कलित बनी पाकर वह धारा ।
जिससे हुआ पियूष सिक्त वसुधा तल सारा ॥
श्याम-घटा में प्रेम की धारा ही है सरसती ।
इसी लिये वह सभी पर रस धारा है बरसती ॥ २ ॥

सब अग जग को गगन गोद में है ले लेता ।
किसके मुख को तेज नहीं उज्ज्वल कर देता ॥
मंद मंद चल पवन मुग्ध सब को है करती ।
देती है फल फूल रुचिर कृमि तक को धरती ॥
निज शीतलता से सलिल सब को करता है सुखित ।
मूल प्रेम धारा प्रकृति पंचतत्व में है निहित ॥ ३ ॥

पद्य-प्रमोद

रिपु के कर में भी प्रसून है विकच दिखाता ।
छेदन रत नख निचय सुरभि उससे है पाता ॥
जिसके कर से कटा दसन से गया बिदारा ।
फल करता है मुदित उसे स्वादित रस द्वारा ॥
तरु से धाया कब नहीं पाहन हन्ता को मिली ।
परस प्रेम धारा नहीं किस की कृति कलिका खिली ॥ ४ ॥

पाहन गठित अपार नेरु उर को सुद्रवित कर ।
वह लहराती मिली रूप सरिसोंतों का धर ॥
निकली सुरसरि सदृश कहीं पावन सलिता बन ।
करके सफलित धरा धाम मल रहित मलिन मन ॥
मरुमहि भूति मतीर का सलिल सुशीतल है वही ।
विविध मूर्ति धर कर कहाँ नहीं प्रेमधारा बही ॥ ५ ॥

ओस, तृणलता कुसुम विपट पल्लव सिंचन रत ।
बहु तरु चंदन करी सुरभि मलयाद्रि अंक गत ॥
विविध दिव्यमणि जनित ज्योति उज्ज्वल उपकारी ।
बहु ओषधी प्रसूत शक्ति-जीवन संचारी ॥
जगत जीव प्रतिपालिका पय धारा उरजों भरी ।
क्या है ? नानामूर्ति धर प्रेमधार ही अवतरी ॥ ६ ॥

जो सत्ता है नित्य सत्य चिन्मयी अनूपा ।
संस्मृति मूली भूत परम आनन्द स्वरूपा ॥
विश्व-व्यापिनी विपुल-सूक्ष्म जिसकी है धारा ।
वस्तुमात्र में है विकाश जिसका अति न्यारा ॥
धारा ही में प्रेम की वह होती है प्रतिफलित ।
इस समुद्र में ही दिखा पड़ी मूर्ति उसकी कलित ॥ ७ ॥

प्रेमधारा

बुझ जाता है कलह-विरोध प्रबल दावानल ।
 बह जाता है मोह मूल बहु मानस का मल ॥
 जाता है सविकार मैल धुल जी का सारा ।
 गिर जाता है टूट टूट कर कुरुचि करारा ॥
 धारा द्वारा प्रेम की ढह जाता है बिटप मद ।
 किये अपार प्रयत्न भी टिकता नहीं प्रमाद पद ॥ ८ ॥

बन जाती है सुखविवती पर हित रति क्यारी ।
 हो जाती है सरस मुरुचि प्रियता फुलवारी ॥
 धरा बंधुता मानवता की सिंच जाती है ।
 सहृदयता कृषि वांछनीय जीवन पाती है ॥
 धारा ही से प्रेम की कल कृति बिटपावलि पली ।
 सहज सुजनता बाटिका पुलकितहो फ़ली फली ॥ ९ ॥

कपट-जाल शैवाल समूह उपज नहीं पाता ।
 मोह पटल आवर्त्त नहीं पड़ता दिखलाता ॥
 बुद्धुद कुत्सित भाव कदापि नहीं उठ पाते ।
 नहीं नाना कुविचार फेन बहते उतराते ॥
 कुमति मलिनता प्रेम की धारा में आती नहीं ।
 छल-झाया प्रतिविम्बिता कथमपि हो पाती नहीं ॥ १० ॥

मिलती हैं वे भावमयी लहरें लहराते ।
 जो कि मंजुतर मनुज मनो को हैं कर जाती ॥
 भावुक जन बह रत्न-राजि अनुपम है पाता ।
 जिस से मंदित हो वर्ध को है अपनाता ॥
 धारा ही में प्रेम का खिलता है वह कल कमल ।
 सुरभित होता है सुरभि से जिसकी सध अबनि-तल ॥ ११ ॥

पद्य-प्रमोद

वीर उर बसी विजय प्रेम धारा के द्वारा ।
है मृणाल के तन्तु-तुल्य लगती असि धारा ॥
निज प्रियतम के प्रेम धार में डूबी वाला ।
गिनती है अंगार पुंज को पंकज माला ॥
शान्त हुआ इस प्रेम की धारा ही से वह अनल ।
जिससे जन प्रह्लाद को मिला अलौकिक भक्ति फल ॥१२॥

जिसे धन विभव विविध प्रलोभन हैं न लुभाते ।
हाव-भाव सुविलास जिसे वश में नहिं लाते ॥
रूप माधुरी बदन कान्ति कोमलता प्यारी ।
नहिं करती अनुरक्त जिसे आकृति अति न्यारी ॥
अनुगत कर पाती नहीं जिसको बहु अनुनय विनय ।
वश में करता है उसे अंतर प्रेम प्रवाह मय ॥१३॥

वे लोचन हैं लोक लोचनों को बेलमाते ।
वे उर हैं संसार उरों में सुधा बहाते ॥
वह प्रदेश है भाव राज्य की भू बन जाता ।
वह समाज है शान्ति शिखर पर शोभा पाता ॥
वाञ्छित धृति से धर्म वे धारण करते हैं मही ।
जिनमे समुचित प्रगति से पूत प्रेम धारा बही ॥१४॥

देश जाति कुल जनित भिन्नता चरित विषमता ।
रुचि विचार आचार शील व्यवहार असमता ॥
परम कठिनता मयी मेदिनी है पथरीली ।
होती है पा जिन्हें प्रेम धारा गति ढीली ॥
किन्तु इसी के अति सरस प्रबल प्रवाहों में पड़े ।
वारिधि विविध बिभेद के बनते हैं जल के घड़े ॥१५॥

प्रेमधारा

परम प्रशंसित राजकीय सत्तायें सारी ।
बड़ी बड़ी सामरिक विजय भूतल वशकारी ॥
प्रेम-प्रवाह-प्रसूत विजय सत्ताओं जैसी ।
व्यापक हितकर हृदय रंजिनी उनके ऐसी ।
किसी काल में कब हुई वैसी कोमल उज्वला ।
वे हैं बिजली की विभा ए हैं राकापति कला ॥१६॥

प्रबल नृपति आतंक, वाहिनी जगत विजयिनी ।
प्रलय-कारिणी तोंप रण धरा काल प्रणयिनी ॥
निधि उत्ताल तरंग मान गिरि पावक स्त्री ।
जन-समूह का आर्त नाद पाहन उर द्रावी ॥
जिन वीरों के पवि उरों को न प्रभावित कर सके ।
किसी प्रेम धारा मयी रुचि के हाथों धे विके ॥१७॥

पावन वेद प्रसूत प्रेम की व्यापक धारा ।
हुई प्रवाहित परम सरस कर भूतल सारा ॥
उससे भारत धरा यदि हुई स्वर्ग समाना ।
तो पाया सुख अन्य अखिल देशों ने नाना ॥
मानव भूरे सित असित पीत लाल औ सांवले ।
सदा इसी के कूल पर लालित हो फूले-फले ॥१८॥

वैदिक ऋषिगण परम सरल भावुक उर द्वारा ।
बुद्धदेव के सदय हृदय का ढूँढ़ सहारा ॥
ईसा और मुहम्मदादि अंतर कर सावित ।
हुई प्रेम धारा मधुमयता सहित प्रवाहित ॥
कई कोटि जन आज भी उसके प्रबल प्रभाव से ।
बँधे एकता सूत्र में रहते हैं सद्भाव से ॥१९॥

पद्य-प्रमोद

प्रति हिंसा प्रिय दनुज देवता है बन जाता ।
विविध विभव मद अंध दिव्य लोचन है पाता ।
पर स्वतंत्रता हरण पिपासा कुटिल पिशाची ।
प्रबल राज्य विस्तार कामना सुमुखि घृताची ॥
बन जाती हैं देवियां सकल सदाशयता मयी ।
पड़ कर प्रेम-प्रवाह में हो पाहनता पर जयी ॥२०॥

कभी न लोहित अवनि रुधिर धारा से होती ।
पर की ममता कभी नहीं मद धारा खोती ।
कभी किसी का प्रकृत स्वत्व औ गौरव सारा ।
नाश न होता कुटिल नीति धारा के द्वारा ।
मनुजोचित अधिकार भी कभी नहीं जाता छिना ।
जो वह पातीं प्रेम की धारायें बाधा बिना ॥२१॥

कहीं सामने देश भेद के मेरु खड़े हैं ।
कहीं जाती वंधन के ऊँचे बांध पड़े हैं ।
कहीं भित्ति है धर्म भिन्नता कठिन शिला की ।
कहीं कंकरो मयी धरा है रुचि प्रियता की ।
किन्तु मेरु को बेध कर औरों का करके दलन ।
वह निकलेंगी प्रेम की धारायें अविछिन्न बन ॥२२॥

प्रकृत बात कब तक कुहकों में पड़ी रहेगी ।
कब तक कटुता कूट नीति सत्यता सहेगी ।
होंगे दूर विभेद परस्पर प्यार बढ़ेगा ।
टले पयोद प्रमाद मयंक प्रमोद कड़ेगा ।
आवेंगे वे दिवस जब छटा बढ़ाती छेम की ।
बहती होगी धरा पर अविरल धारा प्रेम की ॥२२॥

प्रेमधारा

व्यापक धर्म समूह मूल सिद्धान्त एकता ।
सब देशों के विबुध वृन्द की वर विवेकता ।
भ्रातापन का भाव जातिगत स्वार्थ महत्ता ।
मानवता का मंत्र विविध स्वाभाविक सत्ता ।
दूर करेंगी उरों से सकल अवांछित भिन्नता ।
शमन करेगी प्रेम की धारा मानस खिन्नता ॥२४॥

उस दिन सारे देश बनेंगे शान्ति निकेतन ।
फहरेंगे !सब ओर सदाशयता के केतन ।
सभी जातियां सभ्य सुखी स्वाधीन रहेगी ।
स्नेह तरंगों बीच उमंगों सहित बहेंगी ।
होवेगी जनता सकल निज अधिकारों पर जयी ।
हो जावेगी सब धरा प्रकृत प्रेम धारा मयी ॥२५॥

— — —

धर्मवीर ।

[पद्य]

यह जगत जिसके सहारे से सदा फूले-फले ।

ज्ञान का दीया निराली ज्योति से जिसके जले ॥

आँच में जिसके पिघल कर काँच हीरे सा ढले ।

जो बड़ा ही दिव्य है, तलछट नहीं जिसके तले ॥

हैं उसे कहते धरम, जिस से टिकी है यह धरा ।

तेज से जिसके चमकता है, गगन तारों-भरा ॥ १ ॥

पालनेवाला धरम का है कहाता धर्मवीर ।

सब लकीरों में उसी की है बड़ी सुन्दर लकीर ॥

है सुरत्रों से भरी संसार में उसकी कुटीर ।

वह अलग करके दिखाता है जगत को छीर नीर ॥

है उसी से आज तक मरजाद की सीमा बची ।

सीढ़ियाँ सुख की उसीके हाथ की ही हैं रची ॥ २ ॥

एक-देशी वह जगत-पति को बनाता है नहीं ।

बात गढ़ कर एक का उसको बताता है नहीं ॥

रङ्ग अपने ढङ्ग का उस पर बढ़ाता है नहीं ।

युक्तियों के जाल में उसको फँसाता है नहीं ॥

भेद का उसके लगाता है वही सच्चा पता ।

ठीक उसका भाव देता है वही सब को बता ॥ ३ ॥

धर्मवीर

तेज सूरज में उसीका देख पड़ता है उसे ।

वह चमकता बादलों के बीच मिलता है उसे ॥

वह पवन में और पानी में झलकता है उसे ।

जगमगाता आग में भी वह निरखता है उसे ॥

राजती सब ओर है उसके लिये उसकी विभा ।

पथरों में भी उसे उसकी दिखाती है प्रभा ॥ ४ ॥

पेड़ में उसको दिखाते हैं हरे पत्ते लगे ।

वह समझता है सुयश के पत्र हैं उसके टँगो ॥

फूल खिलते हैं, अनूठे रङ्ग में उसके रँगो ।

फल, उसे, रस में उसीके, देख पड़ते हैं पगे ॥

एक रजकण भी नहीं है आँख से उसकी गिरा ।

राह का तिनका दिखाता है उसे भेदों भरा ॥ ५ ॥

सोचता है वह, जो मिलते हैं उसे पर्वत खड़े ।

हैं उसी की राह में सब ओर ये पथर गड़े ॥

जो दिखाते हैं उसे मैदान छोटे या बड़े ।

तो उसे मिलते वहाँ हैं ज्ञान के बीये पड़े ॥

वह समझता है पयोनिधि प्रेम से उसके गला ।

जंगलों में भी उसे उसकी दिखाती है कला ॥ ६ ॥

हैं उसीकी खोज में नदियाँ चली जाती कहीं ।

है तरावट भूलती उसकी कछारों को नहीं ॥

याद में उसकी सरोवर लोटता सा है वहीं ।

निर्भरों के बीच छींटें हैं उसी की उड़ रहीं ॥

वह समझता है उसी की धार सोतों में वही ।

झलमलाता सा दिखाता भील में भी है वही ॥ ७ ॥

पद्य-प्रमोद

भीर भीरों की उसी की भर रही है भाँवरें ।

गान गुण उसका रसीले कण्ठ से पंखी करें ॥

भना भना कर मक्खियाँ हर दमे उसी का दम भरें ।

तितलियाँ हो हो निछावर ध्यान उसका ही धरें ॥

वह समझता है, न है, झनकार भाँगुर की डगी

है सभी कीड़े मकोड़ों को उसी की धुन लगी ॥ ८ ॥

है अछूती जोत उसकी मंदिरों में जग रही ।

मसजिदों गिरजाघरों में भी दरसता है वही ॥

बौद्ध-मठ के बीच है दिखला रहा वह एक ही ।

जैन-मंदिर भी, छुटा उसकी छटा से है नहीं ॥

ठीक इनमें दीठ जिसकी है नहीं सकती ठहर ।

देख पड़ती है उसीकी आँख में उसको कसर ॥ ९ ॥

शङ्ख उसके ही लिये देता जगत को है जगा ।

बाँग भी सबको उसीकी ओर देती है लगा ॥

गान इन ईसाइयों का ताल औ लय में पगा ।

इस सुरत को है उसीकी ओर ले जाता भगा ॥

जो बिना समझे किसीको भी बनाता है बुरा ।

वह समझता है, वही सच पर चलाता है छुरा ॥१०॥

हो तिलक तिरछा, तिकोना, गोल, आड़ा या खड़ा ।

गौन हो, दस्तार हो, या बाल हो लॉंवा बड़ा ॥

जो बनावट का बुरा धब्बा न हो इन पर पड़ा ।

तो सभी हैं ठीक, देते हैं दिखा पारस गड़ा ॥

जो इन्हें लेकर भगड़ता या उड़ाता है हँसी ।

जानता है, वह, समझ है जाल में उसकी फँसी ॥११॥

धर्मवीर

गेरुआ कपड़ा पहनना, धूमना, दम-साधना ।

राख मलना, गरमियों में आग जलती तापना ॥

जङ्गलों में वास करना, तन न अपना ढाँकना ।

बाँधना कंठी, गले में सेल्हियों का डालना ॥

वह इन्हें मन जीत लेने की जुगुत है जानता ।

जो न उतरा मैल तो सूखा ढचर है मानता ॥१२॥

पतजिवा, रुद्राक्ष, तुलसी की बनी माला रहे ।

या कोई तसवीह हो या पोर उँगली की गहे ॥

या बहुत सी कंकड़ी लेकर कोई गिनना चहे ।

या कि प्रभु का नाम अपनी जीभ से याँही कहे ॥

लौ लगाने को बुरा इनमें नहीं है एक भी ।

आँख में उसकी नहीं तो, काठ मिट्टी हैं सभी । १३॥

ध्यान, पूजा, पाठ, व्रत, उपवास, देवाराधना ।

धूमना सब तीरथों में, आसनों को नाधना ॥

योग करना, दीठ को निज नासिका पर बाँधना ।

सैकड़ों संयम नियम में इन्द्रियों को नाधना ॥

वह समझता है सभी हैं ज्ञान-माला की लड़ी ।

जो दिखावट की न भही छींट हो इन पर पड़ी ॥१४॥

बौद्ध, त्रिपिटिक, बाइबिल, तौरेत, या हांवे कुरान ।

जिन्दवस्ता, जैन की ग्रन्थावली, या हो पुरान ॥

वेद-मत का ही बहुत कुछ है हुआ इनमें बखान ।

है वहा बहु धार से इनमें उसीका दिव्य ज्ञान ॥

ठीक इसका भेद गुण लेकर वही है बूझता ।

है बुरी वह आँख अवगुण ही जिसे है सूझता ॥१५॥

पथ-प्रमोद

बुद्ध, जिन, ईसा, मुहम्मद, और मूसा को भला ।

कौन कह सकता है, दुनिया को इन्होंने है छला ॥

सोच लो जरदस्त भी है क्या कहीं उलटा चला ।

ये लगाकर आग दुनिया को नहीं सकते जला ॥

वह इसीसे है समझता वेद के पथ पर चढ़े ।

ये समय और देश के अनुसार हैं आगे बढ़े ॥१६॥

बौद्ध, हिन्दू, जैन, ईसाई, मुसलमाँ, पारसी ।

जो बुराई से बचें, रखे न कुछ उसकी लसी ॥

धर्म की मरजाद पालें हो सुरत हरि में बसी ।

तो भले हैं ये सभी, दोनों जगह होंगे जसी ॥

वह उसीको है बुरा कहता किसी को जो छले ।

है धरम कोई न खोटा ठीक जो उसपर चले ॥१७॥

बौद्ध-मत, हिन्दू धरम, इसलाम या ईसाइयत ।

हैं, जगत के बीच जितने जैन आदिक और मत ॥

वह बताता है सभी की एक ही है असलियत ।

है स्वमत में निज विचारों के सबब हर एक रत ॥

ठौर है वह एक ही, यह राह कितनी हैं गई ।

दूध इनका एक है, केवल पियाले हैं कई ॥१८॥

वह क्रिया से है भली जी की सफाई जानता ।

पंडिताई से भलाई को बड़ी है मानता ।

वह सचाई को पखंडों में नहीं है सानता ।

वह धरम के रास्ते को ठीक है पहचानता ॥

ज्ञान से जग-बीच रहकर हाथ वह धोता नहीं ।

आड़ में परलोक की वह लोक को खोता नहीं ॥१९॥

धर्मवीर

तंग करना, जी दुखाना, छेड़ना भाता नहीं ।

वह बनाता है, कभी सुलझे को उलभाता नहीं ॥

देखकर दुख दूसरों का चैन वह पाता नहीं ।

एक छोटे कीट से भी तोड़ता नाता नहीं ॥

लोक-सेवा से सफल होकर सदा बढ़ता है वह ।

धूल बनकर पाँव की जन शीश पर चढ़ता है वह ॥२०॥

धन, विभव, पद, मान, उसको और देते हैं भुका ।

प्रेम बदले के लिये उसका नहीं रहता रुका ॥

वह अजब जल है उसे जाता है जो जग में फुँका ।

बैरियों से वह कभी बदला नहीं सकता चुका ॥

प्यार से है बाध से विकराल को लेता मना ।

वह भयंकर ठौर को देता तपोवन है बना ॥२१॥

हैं कहीं काले बसे, गोरे दिखाते हैं कहीं ।

लाल, पीले, सेत, भूरे, साँवले भी हैं यहीं ॥

पीढ़ियाँ इनकी कभी नीची, कभी ऊँची रहीं ।

रँग बदलने से बदलती दीठ है उसकी नहीं ॥

भेद वह अपने पराये का नहीं रखता कभी ।

सब जगत है देश उसका जाति हैं मानव सभी ॥२२॥

वह समझता है-सभी रज वीर्य से ही हैं जना ।

मांस का ही है कलेजा दूसरों का भी बना ॥

आन जाने पर न किसकी आँख से आँसू छना ।

दूसरे भी चाहते हैं मान का मुट्ठी चना ॥

खौलना जिसका किसीसे भी नहीं जाता सहा ।

है रगों में दूसरों की भी वही लोहू बहा ॥२३॥

पद्य-प्रमोद

वह तनिक रोना, कल्पना और का सहता नहीं ।

हाथ धोकर और के पीछे पड़ा रहता नहीं ॥
बात लगती वह किसीको एक भी कहता नहीं ।

चोट पहुँचाना किसीको वह कभी चाहता नहीं ॥
जानता है दीन दुखियों के दरद को भी वही ।
बेकसों की आह उससे है नहीं जाती सही ॥ ४१॥

ए चुड़ैलें चाह की उसको नहीं सकतीं सता ।
प्यार वह निज वासनाओं से नहीं सकता जता ॥
मोह की जी में नहीं उसके उलहती है लता ।
है कलेजे में न कोने का कहीं मिलता पाता ॥
रोस की, जी में कभी उठती नहीं उसके लपट ।
छल नहीं करता किसीसे वह नहीं करता कपट ॥ २५॥

गालियाँ भाती नहीं, ताने नहीं जाते सहे ।
आग लग जाती है कच्ची बात जो कोई कहे ॥
देख कर नीचा किसी की आँख कब ऊँची रहे ।
ठोकरें खाकर भला किसीको नहीं आँसू बहे ॥
वह समझता है न इतना घाव करती है छुरी ।
ठेस होती है बड़ी ही इस कलेजे की बुरी ॥ २६॥

देख करके तोप को जाता कलेजा है निकल ।
यह बुरी बंदूक लखकर जी नहीं सकता सम्हल ॥
बरछियाँ, तलवार, भाले हैं बना देते विकल ।
गोलियाँ, बारूद, छर्रे, आँख करते हैं सजल ॥
उस समय तो और भी उसका तड़पता है जिगर ।
जब समझता है कि इनमें है भरी जी की कसर ॥ २७॥

धर्मवीर

क्यों बहाने को लहू हथियार सब जाते गढ़े ।

दूसरों पर दूसरे फिर किस लिये जाते चढ़े ॥

किसलिये रणपोत बनते और वे जाते मढ़े ।

नासमझ का काम करते किसलिये लिखे पढ़े ॥

जो उसीकी भाँति उठती प्यार की सब की भुजा ।

तो दिखाती शान्ति की सब ओर फहराती धुजा ॥२८॥

पेट भरने के लिये कटता किसीका क्यों गला ।

एक भाई के लिये क्यों दूसरा होता बला ॥

इस जगत में किस लिये जाता कभी कोई छला ।

बहु बसा घर क्यों कलह की आग में होता जला ॥

ठीक सुन्दर नीति उसकी जो सदा होती चली ॥

तो कटी डालें दिखाती आज दिन फूली फली ॥ २९ ॥

है विभव किस काम का वह हो लहू जिसमें लगा ।

आग उस धन में लगे जिसमें हुई कुछ भी दगा ॥

गर्व वह गिर जाय जिसका है सताना ही सगा ।

धूल में वह पद मिले जो है कलंकों से रंगा ॥

वह विवश होकर सदा दुख से सुनाता है यही ।

वह धरा धँस जाय जिस पर हैं कभी लोथें ढही ॥३०॥

यह भला है, यह बुरा है, वह समझता है सभी ।

भूसियों में, छोड़कर चावल नहीं फँसता कभी ॥

जब ठिकाने है पहुँचता मोद पाता है तभी ।

बात थोथी है नहीं मुँह से निकलती एक भी ॥

है जहाँ पर चूक उसकी आँख पड़ती है वहीं ।

जड़ पकड़ता है उलझता पत्तियों में वह नहीं ॥३१॥

पद्य-प्रमोद

आदमी का ऐंठना, बढ़ना, बहकना, बोलना ।

रूठना, हँसना, मचलना, मुँह न अपना खोलना ॥

संग बन जाना, कभी इन पत्तियों सा डोलना ।

वह समझता है तराजू पर उसे है तोलना ॥

है उसीने ही पढ़ी जी की लिखावट को सही ।

गुथियाँ उसकी सदा है ठीक सुलभाता वही ॥३२॥

देखता अंधा नहीं, उजले न होते हैं रंगे

दौड़ता लँगड़ा नहीं, सोये नहीं होते जगे ।

क्यों न वह फिर रास्ते पर ठीक चलने से डगे ।

हैं बहुत से रोग, जिसके एक ही दिल को लगे ॥

देखकर बिगड़ा किसीको वह नहीं करता गिला ।

काम की कितनी दवायें हैं उसे देता पिला ॥३४॥

देखकर गिरते उठाता है, बिगड़ जाता नहीं ।

वह छुड़ाता है फँसे को, और उलभाता नहीं ॥

राह भूले को दिखा देता है भरमाता नहीं ।

है बिगड़ते को बनाता, आँख दिखलाता नहीं ॥

सर अँधेरे में भला किसका न टकराया किया ।

वह अँधेरा दूर करता है, जलाता है दिया ॥३४॥

जीव जितने हैं जगत में, हैं उसे प्यारे बड़े ।

दुख उसे होता है जो तिनका कहीं उनको गड़े ॥

एक चींटी भी कहीं जो पाँव के नीचे पड़े ।

तो अचानक देह के होते हैं सब रोयें खड़े ॥

हैं छुटे उसकी दया से ये हरे पत्ते नहीं ।

तोड़ते इनको उसे है पीर सी होती कहीं ॥३५॥

धर्मवीर

कँप उठे सब लोक पत्ते की तरह धरती हिले ।

राज, धन जाता रहे, पद, मान, मिट्टी में मिले ॥

जीभ काटी जाय, फोड़ी जाँय आँखें, मुँह सिले ।

सैकड़ों टुकड़े बदन हो, पत चमड़े की छिले ॥

छोड़ सकता उस समय भी वह नहीं अपना धरम ।

जब रहें हर एक रोयें नोचते चिमटे गरम ॥३६॥

धर्मवीरों की चले, सब लोग हो जावें भले ।

भाइयों से भाइयों का जी न भूले भी जले ॥

चन्द्रमा निकले धरम का, पाप का बादल टले ।

हे प्रभो संसार का हर एक घर फूले फले ॥

इस धरा पर प्यार की प्यारी सुधा सब दिन बहे ।

शान्ति की सब ओर सुन्दर चाँदनी छिटकी रहे ॥३७॥



कर्मवीर

[पद्य]

देख कर बाधा विविध, बहु विघ्न घबराते नहीं ।

रह भरोसे भाग के दुख भोग पछताते नहीं ॥

काम कितना ही कठिन हो किन्तु उकताते नहीं ।

भीड़ में चंचल बने जो वीर दिखलाते नहीं ॥

हो गये एक आन में उनके बुरे दिन भी भले ।

सब जगह सब काल में वेही मिले फूले फले ॥ १ ॥

आज करना है जिसे करते उसे हैं आज ही ।

सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही ॥

मानते जी की हैं सुनते हैं सदा सब की कही ।

जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आप ही ॥

भूल कर वे दूसरों का मुँह कभी तकते नहीं ।

कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं ॥ २ ॥

जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं ।

काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं ॥

आज कल करते हुए जो दिन गँवाते हैं नहीं ।

यत्न करने में कभी जो जी चुराते हैं नहीं ॥

बात है वह कौन जो होती नहीं उनके किये ।

वे नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिये ॥ ३ ॥

कर्मवीर

व्योम को छूते हुए दुर्गम पहाड़ों के शिखर ।

वे घने जंगल जहाँ रहता है तम आठो पहर ॥

गर्जते जल-राशि की उठती हुई ऊँची लहर ।

आग की भयदायिनी फैली दिशाओं में लवर ॥

ये कँपा सकृत् कभी जिसके कलेजे को नहीं ।

भूलकर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं ॥ ४ ॥

चिलचिलाती धूप को जो चाँदनी देवें बना ।

काम पड़ने पर करें जो शेर का भी सामना ॥

जो कि हँस हँस के चबा लेते हैं लोहे का चना ।

“है कठिन कुछ भी नहीं” जिनके है जी में यह ठना ॥

कोस कितने ही चलें पर वे कभी थकते नहीं ।

कौन सी है गाँठ जिसको खोल वे सकते नहीं ॥ ५ ॥

ठीकरी को वे बना देते हैं सोने की डली ।

रेग को करके दिखा देते हैं वे सुन्दर खली ॥

वे बबूलों में लगा देते हैं चंपों को कली ।

काक को भी वे सिखा देते हैं कोकिल-काकली ॥

ऊसरो में हैं खिला देते अनूठे वे कमल ।

वे लगा देते हैं उकठे काठ में भी फूल फल ॥ ६ ॥

काम को आरंभ करके यों नहीं जो छोड़ते ।

सामना करके नहीं जो भूल कर मुँह मोड़ते ॥

जो गनन के फूल बातों से वृथा नहीं तोड़ते ।

संपदा मन से करोड़ों की नहीं जो जोड़ते ॥

बन गया हीरा उन्हीं के हाथ से है कारबन ।

काँच को करके दिखा देते हैं वे उज्ज्वल रतन ॥ ७ ॥

पद्य-प्रमोद

पर्वतों को काटकर सड़कें बना देते हैं वे ।

सैकड़ों मरुभूमि में नदियाँ बहा देते हैं वे ॥

गर्भ में जल-राशि के बेड़ा चला देते हैं वे ।

जंगलों में भी महा-मङ्गल रचा देते हैं वे ॥

भेद नभ तल का उन्होंने है बहुत बतला दिया ।

है उन्होंने ही निकाली तार तार की सारी क्रिया ॥ ८ ॥

कार्य-थल को वे कभी नहीं पूछते “वह है कहाँ” ।

कर दिखाते हैं असंभव को वही संभव यहाँ ॥

उलभनं आकर उन्हें पड़ती हैं जितनी ही जहाँ ।

वे दिखाते हैं नया उत्साह उतना ही वहाँ ॥

डाल देते हैं बिरोधी सैकड़ों ही अड़चन ।

वे जगह से काम अपना ठीक करके ही टलें ॥ ९ ॥

जो रुकावट डाल कर होवे कोई पर्वत खड़ा ।

तो उसे देते हैं अपनी युक्तियों से वे उड़ा ॥

बीच में पड़कर जलधि जो काम देवे गड़बड़ा ।

तो बना देंगे उसे वे बुद्र पानी का घड़ा ॥

बन खँगाँलेंगे करेंगे व्योम में बाजीगरी ।

कुछ अजब धुन काम के करने की उनमें है भरी ॥ १० ॥

सब तरह से आज जितने देश हैं फूले फले ।

बुद्धि, विद्या, धन, विभव के हैं जहाँ डेरे डले ॥

वे बनाने से उन्हीं के बन गये इतने भले ।

वे सभी हैं हाथ से ऐसे सपूतों के पले ॥

लोग जब ऐसे समय पाकर जनम लेंगे कभी ।

देश की औ जाति की होगी भलाई तभी ॥ ११ ॥

जीवनमुक्त

[अरिल]

किसे नहीं ललना-ललामता मोहती ।

विफल नहीं होता उसका टोना कहीं ॥

किसे नहीं उसके विशाल दृग बेधते ।

किसे कुसुम सायक कंपित करता नहीं ॥ १ ॥

निज लपटों से करके दग्ध विपुल हृदय ।

कलह, वैर, कुवचन-अंगारक प्रसवती ॥

करके भस्मीभूत विचार, विवेक को ।

किसके उर में क्रोध आग नहीं दहकती ॥ २ ॥

अनुचित उचित विचार-विहीन, उपद्रवी ।

प्रतिहिंसा-प्रिय, हठी, निमज्जित अज्ञता ॥

असहन-शील, कठोर, दाभिक, मंद-धी ।

किसे नहीं करती प्रमत्त, मद-मत्तता ॥ ३ ॥

कहीं कान्त-स्वर-ग्राम रूप में है रमा ।

कहीं सरस रस परिमल बन कर सोहता ॥

सुत-कलत्र ममता-स्वरूप में है कहीं ।

मधुर मूर्ति से मोह किसे नहीं मोहता । ४ ॥

पद्य-प्रमोद

तीन लोक का राज तथा सारा विभव ।

पा करके भी वृप्ति नहीं होती जिसे ॥

रुधिर-पात पर-पीड़न का जो हेतु है ।

भला लोभ विचलित करता है नहीं किसे ॥ ५ ॥

चाहे द्रोह, प्रमाद, असूया आदि हो ।

चाहे हो मत्सर, चाहे हो पिशुनता ॥

काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ जैसे अपार ।

दोष हैं न, ये सकल दोष के हैं पिता । ६ ॥

अनुपम साधन तथा आत्मवल अतुल से ।

जिसका जीवन इन दोषों से मुक्त है ॥

पूत-चरित लोकोत्तर-गुण-गरिमा-बलित ।

वही इस अवनि-तल पर जीवनमुक्त है ॥ ७ ॥

क्या सकामता उसमें होती है नहीं ?

होती है, पर वह होती है सुरुचि-मय ॥

बन जाता है परम फलद औ पूत तम ।

काम-विशिख छू अति पावन उसका हृदय ॥ ८ ॥

नहिं विलासिता हेतु बनी उसके लिये ।

किसी काल में कामिनि-कुल-कमनीयता ॥

बरन उसे सब काल दिखा उसमें पड़ी ।

उस महान महिमा-मय की महनीयता ॥ ९ ॥

उस पावक सा पूत कोप उसका मिला ।

जो कंचन को तपा बनाता है विमल ॥

या होता है वह उस बाल पतंग सा ।

जो समुदित हो देता है तम-तोम दल ॥ १० ॥

जीवनमुक्त

उस आतप सा भी कह सकते हैं उसे ।

जिसके पीछे सुखद सलिल है बरसता ॥

वह सुतप्त जल भी उसका उपमान है ।

तन जिससे पाता है अनुपम निरुजता ॥ ११ ॥

यह वह शासन है जिससे सुधरे कुधी ।

यह वह नियमन है जिसमें है हित निहित ॥

वह प्रयोग है मुक्त जनों का कोप यह ।

जिससे अविहित रत पाता है पथ विहित ॥ १२ ॥

आत्म-त्याग का अति पुनीत मद पान कर

वह रहता है सदा विमुग्ध प्रमत्त सा ॥

होती हैं इसलिये भूत-हित में रँगी ।

सकल भावनायें उसकी मद-संभवा ॥ १३ ॥

पर-दुःख-कातरता पर वरता बंधता ।

अहंमन्यता को मानवता पगों पर ॥

सदा निष्ठावर करता है वह मुग्ध हो ।

पर-हित-प्रियता पर गौरव-गरिमा अपर ॥ १४ ॥

कर विलोप साधन नभ-तारक-पुंज का ।

दिन-नायक सा नहीं होता उसका उदय ॥

समुदित होता है वह कुमुदिनि-कान्त सा ।

सप्रभ, अविकलित, रंजित, रख तारक-निचय ॥ १५ ॥

होता है उर मोह महत्ताओं भरा ।

होती हैं भ्रम-मयी न उसकी पूर्तियाँ ॥

मधुमयता, ममता, विमुग्धता में उसे ।

विश्व-प्रेम की मिलती हैं शुचि मूर्तियाँ ॥ १६ ॥

पद्य प्रमोद

सुन्दर-स्वर लहरी उसकी चित-वृत्ति को ।

ले जाती हैं खींच अलौकिक लोक में ॥

बहती है अति पूत प्रेम-धारा जहाँ ।

भक्ति-सुधा-सँग दिव्य ज्ञान आलोक में ॥ १७ ॥

भाव 'रसो वै सः' का उसमें है भरा ।

परिमल करता है मानस को परिमलित ॥

पाठ सिखा देता है समता का उसे ।

मनन-शीलता सुत-कलत्र ममता-जनित ॥ १८ ॥

कभी लोक-सेवा-लोलुपता-रूप में ।

कभी उच्चतम-प्रेम ललक की मूर्ति बन ॥

मुक्त जनों का लोभ विलसता है कभी ।

पा भावुकता-लसित-लालसा-पूत-तन ॥ १९ ॥

रज-समान गिन तीन लोक के राज को ।

लोक चित्त-रंजन-हित लालायित रहा ॥

बना रहा वह विहित लाभ का लालची ।

सदा विभव तज भव-हित-धारा में बहा ॥ २० ॥

रक्त-पात नियमन मदान्धता दमन का ।

सत्य, न्याय, को समुचित मान प्रदान का ॥

उसके जी से लोभ न जाता है कभी ।

जीव-दया, सच्ची स्वतंत्रता दान का ॥ २१ ॥

देव-बुद्धि

कर लिये करवाल अकुण्ठता ।

कनक-कश्यप ने जब यों कहा ॥

तब महाप्रभु क्या परिव्याप्त है ।

इस महाजड़ प्रस्तर-स्तम्भ में ॥ १ ॥

तब अकम्पित औ दृढ़ कण्ठ से ।

यह कहा प्रह्लाद प्रबुद्ध ने ॥

जब महाप्रभु व्यापक विश्व है ।

तब नहीं वह है किस वस्तु में ॥ २ ॥

पत्ते पत्त प्रगट करते कीर्ति लोकोत्तरा हैं ।

कीटों में भो प्रथित महिमा की प्रभा व्यञ्जिता है ॥

कैसे होगी न प्रभु-वर की स्तम्भ में दिव्य सत्ता ।

जो धूली के सकल कण में है कला दृष्टि आती ॥३॥

कोई भी है न इस जग में वस्तु ऐसी कहीं भी ।

पाया जाता न कुछ जिसमें अंश आकाश का हो ॥

मैं पाता हूँ वियत सँगवाँ वायु औ तेज को भी ।

कैसे होगी न फिर उसमें नाथ की सूक्ष्म सत्ता ॥४॥

ये बातें ऐ सहृदय जनो ! हैं यहीं तो बताती ।

जो है, अज्ञा, तिमिर-बलिता है वही दानवी भी ॥

ऐसे ही जो परम शुचि है दिव्य ज्योतिर्मयी है ।

सद्भावों की प्रसव-भुवि है, है वही देव-बुद्धि ॥५॥

कुलीनता

[वंशस्थ]

विवेक, विद्या, सुविचार, सत्यता ।

क्षमा, दया, सज्जनता, उदारता ॥

क्रिया, सदाचार, परोपकारिता ।

सदा समाधार कुलीनता रही ॥ १ ॥

परन्तु है आज विचित्र ही दशा ।

विडम्बिता है नित ही कुलीनता ॥

सप्रेम है अर्पित हो रही सुता ।

उसे बत वंशगता कुलागता ॥ २ ॥

किसी बड़े पूज्य महान व्यक्ति का ।

सुवंश-सम्मान प्रदान योग्य है ॥

परन्तु तद्वंशज अज्ञ अग्रणी ।

कदापि कन्यार्पण का न पात्र है ॥ ३ ॥

गुणों बिना केवल वंश, विश्व में ।

कदापि सम्मानित हो सका नहीं ॥

इसे सदा है करती प्रमाणिता ।

कथावली पंकज कज्जलादि की ॥ ४ ॥

अवश्य है अंध-परम्परा किये ।

हमें विवेकादि विहिन मंद-धी ॥

भला नहीं तो हम क्यों विलोकते ।

स्वलोचनों से स्वसुता कदर्थना ॥ ५ ॥

कुलीनता

न मूढ़ ही हैं अविवेक में फँसे ।

यही दशा है मतिमान वृन्द की ॥

समर्थ हैं जो तम के विनाश में ।

स्वयं वही हैं तम-पुंज में पड़े ॥ ६ ॥

पढ़ा, लिखा, अर्जन ज्ञान का किया ।

सुधी बन, जीत सभा अनेक ली ॥

परन्तु पाई न विवेक-बुद्धि तो ।

वृथा हुई सर्व अनुष्ठिता क्रिया ॥ ७ ॥

उठा दृगों को कह दो मनीषियो ।

बनी रहेगी कब लौं समाधिदाता ॥

कुलीनता के मिस निन्दिता प्रथा ।

कुलीन के व्याज विमूढ़-मण्डली ॥ ८ ॥

न काम आई प्रतिभा गरीयसी ।

न बुद्धि विद्या विबुधों भरी सभा ॥

निपातिता जो न हुई प्रयत्न से ।

प्रवर्द्धमाना कुप्रथा-पिशाचिनी ॥ ९ ॥

स्वजाति सेवा-व्रत है विडम्बना ।

समस्त व्याख्यान प्रलाप मात्र है ॥

विवेक-शीला वर बुद्धि आप की ।

विलुप्त होवे यदि कार्य-काल में ॥ १० ॥

समाज के सम्मुख औ सभादि में ।

जिसे बतावें अति कुत्सिता क्रिया ॥

करें उसीको यदि कार्य आ पड़े ।

न अन्य तो है कुप्रवृत्ति ईदृशी ॥ ११ ॥

पद्य-प्रमोद

विलोक ली मुग्ध-करी विदग्धता ।

मनस्विता वाक्-पटुता सयत्नता ॥

शरीर की है धमनी सरक्त तो ॥

हमें दिखा दो निज कार्य-वीरता ॥१२॥

कुलीनता है अब भी अनेकशः ।

सुवंश में शेष बची सुरक्षिता ॥

परन्तु योंहि यदि वंचिता रही ।

विचित्र क्या है यदि हो तिरोहिता ॥१३॥

जहाँ अविद्वान विमूढ़ जुट-धी ।

वरेण्य हैं केवल वंश-सूत्र से ॥

वहाँ बनेगा जन कौन सद्गुणी ।

सयत्न हो अर्जन को कुलीनता ॥१४॥

विधातिनी है गुरुता स्वदेश को ।

विलोपिनी है कुल-वन्दनीयता ॥

विनाशिनी है सुख-शान्ति जाति की ।

अपूज्यता-पूज्य-अपूज्य-पूज्यता ॥ ५ ॥

आरम्भ-शूरता

[अग्लि]

देश, जाति के अधःपतन का मूल है ।

उन्नति का बाधक अपयश का कोप है ॥

कार्य-सिद्धि के लिये कृतान्त-स्वरूप है ।

अति निन्दित आरम्भ-शूरता दोष है ॥ १ ॥

वह साहस है जल-बुद्बुद सा विनसता ।

वह उत्साह प्रभात-सोम से है बढ़ा ॥

वह उमंग है सिकता-विरचित भीत सी ।

जिस पर है आरम्भ शूरता रँग चढ़ा ॥ २ ॥

उसने देखा कभी सफलता-मुख नहीं ।

कभी कामना-वेलि नहीं उसकी खिली ॥

कभी न उसका भाग्य-गगन उज्ज्वल हुआ ।

जिसकी कृति आरम्भ-शूरता से हिली ॥ ३ ॥

वह उद्योग-समूह मिलेगा धूल में ।

वह सयन्नता होगी असफलता प्रसी ॥

वह प्रिय कार्य सकेगा नहीं सम्पन्न हो ।

जिसमें हैं आरम्भ शूरता आ बसी ॥ ४ ॥

इव गया गौरव-भयंक निज कान्ति खो ।

हुई अचानक लोप देश-शोभी कला ॥

किसी काल में कहीं किसी समुदाय का ।

हुआ नहीं आरम्भ-शूरता से भला ॥ ५ ॥

पद्य-प्रमोद

किन्तु बात यह कहते होता हूँ व्यथित ।

हम लोगों में यह अवगुण है अधिकतर ॥

इसीलिये है जगत यही अवलोकता ।

सकते नहीं महान कार्य्य हम एक कर ॥ ६ ॥

धूम धाम से खुली सभायें सैकड़ों ।

सँभलीं नहीं अकाल काल-कवलित हुईं ॥

पड़ कर इस आरम्भ शूरता-पेच में ।

असमय बुझीं अनेक लोक-हित-कर धुईं ॥ ७ ॥

समारम्भ ही जिसका सिद्धि-निदान था ।

पल में जिसकी विपुल-विघ्न-बाधा नसी ॥

आज उसी जड़-भूता हिन्दू जाति की ।

नस नस में आरम्भ शूरता हैं धँसी ॥ ८ ॥

कभी प्रगटती है वह मिस आलस्य के ।

कभी हेतु बनती है कल्पित-सभ्यता ॥

कलह, अमूलक हिंसा, असहन-शीलता ।

कभी उसे उपजाती है अल्पज्ञता ॥ ९ ॥

नहिं करते आरम्भ विघ्न-भय से अधम ।

विघ्न हुए मध्यम जन हैं मुख मोड़ते ॥

बाधा विघ्न सहस्रों सम्मुख आ पड़े ।

उत्तम जन आरम्भ कर नहीं छोड़ते ॥ १० ॥

आरम्भ-शूरता

यह सुउक्ति है युक्तिमयी जिस जाति की ।

क्यों उसमें आरम्भ शूरता आज की ॥

और कहूँ क्या मैं इतना ही कहूँगा ।

उसमें है कर्तव्य-शीलता की कमी ॥११॥

किन्तु कथन करता हूँ यह स्वर तार से ।

सुन ऐ हिन्दू जाति ज्ञान-गौरवमयी ॥

बिना तजे आरम्भ शूरता दोष को ।

कभी न होगी कर्म क्षेत्र में तू जयी ॥१२॥



मन

[चौपदे]

वह गये कान्त भक्ति कालिन्दी ।
कूल जिसके सदा मिले घन तन ॥
बज उठे लोक प्रीति वर बंशी
कौन मन बन गया न वृन्दावन ॥ १ ॥

हैं भले भाव मंजुतम मोती ।
बहु बिलसता विपुल विमल रस है ॥
सोहता हंस हंस जैसा है ।
मानसर के समान मानस है ॥ २ ॥

योग जीवन समाधि अवलम्बन ।
साधना सूत्र सिद्धि का साधन ॥
मंत्र का बीज तंत्र का सम्बल ।
भक्ति-सर्वस्व मुक्ति मठ है मन ॥ ३ ॥

हैं विविध वाजे घटों में बज रहे ।
है सदा जिनसे सुधारस भर रहा ॥
मुग्ध अनहद नाद सुन कर है सुरति ।
किन्तु मन है सुर सत्रों में भर रहा ॥ ४ ॥

मन

है कलश दिननाथ उसके सामने ।

चंद्रमा है एक चाँदी का पदक ॥

जग मगाया सब जगत जिस ज्योति से ।

उस निराली ज्योति का है मन जनक ॥ ५ ॥

क्रीट-मंडित कान्त कुंडल से कलित ।

वर वसन विलसित परम कमनीय तन ॥

मधुमयी मुरली मधुर वादन निरत ।

दो बना बन जायगा घनश्याम मन ॥ ६ ॥

भर गये प्रेमरंग रग रग में ।

हो गये अति अप्रतीति पूरित मति ॥

भावना बन गई भवानी है ।

भाव मन का बना भवानीपति ॥ ७ ॥

जिस बड़े ही भावमय मन में बसीं ।

प्रेम और प्रतीति की ही सूरतें ॥

संग है उसके लिये सत्संग सम ।

सूरतें हैं ज्ञानमय की सूरतें ॥ ८ ॥

है कहाँ पास उस मनुज के मन ।

जो मनन कर न भ्रम निवार सका ॥

आप आकार वान होकर भी ।

जो न साकार को सकार सका ॥ ९ ॥

है सकल मञ्जु गान का वह गेय ।

है अखिल वंदनीय पथ-पाथेय ॥

मन अननुमेय और है अनुमेय ।

ध्यान का ध्येय ज्ञान का है ज्ञेय ॥१०॥

पद्य-प्रमोद

तम सदैव समाधि में उसको मिला ।

कालिमा मन से नहीं जिसके टली ॥

हो सका जिसका विमल मानस उसे ।

ज्योतिमय की ज्योति मंदिर में मिली ॥११॥

योग जप यज्ञ यातना सम है ।

है सकल साधना उपाधि उसे ॥

साधने से सधा न मन जिसका ।

आधि है व्याधि है समाधि उसे ॥१२॥

वह बरसता कभी दुसह द्रव है ।

है कभी वह सरस सुधा स्नावी ॥

है उसी में भरी सकल माया ।

कौन है मन समान मायावी ॥१३॥

जब पकड़ पथ लिया असुबिधा का ।

कर रही है विमुग्ध क्यों सुबिधा ॥

जब द्विविध भाव है भरा मन में ।

हो सके दूर किस तरह द्विविधा ॥१४॥

बीज है वीररस सरस तरु का ।

वीर बर-बोध वंक का है धन ॥

वारि है वीरभाव वारिद का ।

है 'बना' वीरता 'बनी' का मन ॥१५॥

वह बिकच बारिज बदन का है मधुप ।

रूप सर का मीन विधु है छबिधरा ॥

कामिनी ही है परम कामद उसे ।

कांम से है कामियों का मन भरा ॥१६॥

मन

मान मोती उसे मिले कैसे ।

किस तरह नीर छीर पहचाने ॥

मानवों के महान भावों को ।

हंस मन जो न मानसर माने ॥१७॥

है बनाता सरस नहीं उसको ।

रस बरस रागरंग नाना घन ॥

सुख सरित नीर पी नहीं पलता ।

लोकहित स्वाति जल पपीहा मन ॥१८॥

वह रहा दूकानदारी में फँसा ।

जब टिका तब पाप पैठों में टिका ॥

मति कनौड़ी ने कनौड़ा कर दिया ।

मन रहा मणि मोल कौड़ी के बिका ॥१९॥

— — —

पौरुष

[चौपदे]

क्यों न उसकी सदा रहे चाँदी ।
पा कनक के नये नये आकार ॥
जो मनुज-रत्न यत्न कर पाया ।
व्यों उसे रत्न दे न रत्नाकर ॥ १ ॥

जो अमल हैं विकच कमल जैसे ।
बुद्धि जिनकी बनी रही विमला ॥
काम में जो कमाल रखते हैं ।
मिल सकी कब उन्हें नहीं कमला ॥ २ ॥

जब निकाला करें कमर कस कर ।
मोतियों से न क्यों भरे ढोंगे ॥
जो रखेंगे कुबेर सा काबू ।
क्यों न तो धनकुबेर हम होंगे ॥ ३ ॥

पाँव अपने जमा कमर को कस ।
कर कमाई कमा कमा पैसे ॥
जो विभववान हम न बन पाये ।
भव विभव दान तो करें कैसे ॥ ४ ॥

क्यों सुनेगा असिद्धि की बातें ।
है सदा ऋद्धि सिद्धि चाह जिसे ॥
कर रहा है असाध्य साधन वह ।
साधना से मिली न सिद्धि किसे ॥ ५ ॥

पौरुष

जब कभी काम के लिये कस ली ।

क्यों नहीं तो कमाल करते वे ॥

पास जिनके विचार का पर है ।

क्यों नहीं व्योम में बिचरते वे ॥ ६ ॥

एक वैसा कर दिखाता है वही ।

जब कभी जी में रहा जैसा ठना ॥

करतबी ही को न क्यों पारस कहें ।

छू जिसे लोहा सदा सोना बना ॥ ७ ॥

घेरती है जिन्हें न कायरता ।

जो पड़े काम हैं न कतराते ॥

डर जिन्हें है नहीं विफलता का ।

हैं सफलता सदा वही पाते ॥ ८ ॥

जो हमें मिल सका नहीं चावल ।

किस तरह तोष दे सके तो तुष ॥

उस पुरुष को पुरुष कहें कैसे ।

पास जिसके न पा सके पौरुष ॥ ९ ॥

वैसीही सिद्धि मिल सकी उनको ।

लोग थे सिद्ध बन सके जैसे ॥

जो नहीं हैं विभूतियों वाले ।

पा सकेंगे विभूतियाँ कैसे ॥ १० ॥

तब भला रीझती रमा कैसे ।

साधनों में न जब रमा है मन ॥

जब न करतूत धन धनी होंगे ।

तो धनद भी न दे सकेगा धन ॥ ११ ॥

साहित्य

[छप्पै]

भाव गगन के लिये परम कमनीय कलाधर ।
रस उपवन के लिये कुसुम कुल विपुल मनोहर ॥
उक्ति अबनि के लिये सलिल सुरसरि का प्यारा ।
ज्ञान नयन के लिये ज्योतिमय उज्ज्वल तारा ॥
है जन मन मोहन के लिये मधुमय मधुऋतु से न कम ।
संसार सरोवर के लिये है साहित्य सरोज सम ॥१॥

जाति जीवनी शक्ति देश दुख जड़ी सजीवन ।
जीवन हीन अनेक जीवितों का नवजीवन ॥
बुध जन का सर्वस्व अबुध जन बोध विधाता ।
निर्जीवों का जीव सजीवों का मुख दाता ॥
है घनीभूत तम-पुंज में लोकोत्तर आलोक वह ।
है लौकिक विविध विधान का सकल अलौकिक ओक वह ॥२॥

उसमें सरस वसंत सब समय हैं सरसाता ।
सब ऋतु में है मंद मंद मलयज बह जाता ॥
है कोकिल कमनीय कंठ सब काल सुनाता ।
विकसित सरसीरुह समूह है सदा दिखाता ॥
कर कर अनुपम अठखेलियाँ हैं जन मानस मोहती ।
हैं कलित ललित लतिका सकल सब दिन उसमें सोहती ॥३॥

साहित्य

भवनों को जो बालभाव हैं स्वर्ग बनाते ।

श्रुति में जो कल कथन हैं सुधा स्रोत बहाते ॥

कामिनी कुल की कला कान्ति कोमलता न्यारी ।

बहुउदार चित्त वृत्ति विकच कलिका सी प्यारी ॥

नाना विलास लीला विविध हाव भाव अनुभाव सब ।

उसमें विकसित हो लसित हो करते नहीं प्रफुल्ल कब ॥४॥

है अरूप आलाप को रुचिर-रूप बनाता ।

बोल चाल को परम अलंकृत है कर पाता ॥

रसना जनिता उक्ति को रसिकता है देता ।

कल्पलता है विविध कल्पना को कर लेता ॥

बहु अललित भाव समूह में भर देता लालित्य है ।

नारस विचार को भी सरस कर देता साहित्य है ॥५॥

वः वः कवि अमर कीर्तियाँ कैसे पाते ।

जीवित कैसे विपुल अजीवित जन कहलाते ॥

क्यों दिगन्त में सुयश सुयशवाले फैलाते ।

कैसे गुण गुणवान जनों के गाये जाते ॥

इतिहास विदित वसुधाधिपति नाम सुनाता क्यों कहीं ।

साहित्य सुधा से अमरता जो उनको मिलती नहीं ॥६॥

मधुर मधुर ध्वनिसहित ध्वनित कर मानव मानस ।

बहा बहा कर अमित अन्तरो में नव नव रस ॥

बहु विमुग्धता बितर बितर स्वर लहरी द्वारा ।

सिक्त बना कर सरस राग से भूतल सारा ॥

भर भुवन विमोहन भाव सब परम रुचिर पद-पुंज में ।

बजती है प्रतिभा मुरलिका नित साहित्य निकुंज में ॥७॥

पद्य-प्रमोद

साथ लिये अनुकूल कलामय कामिनि का दल ।
गान वाद्य पटु राग रंग रत मानव मण्डल ॥
धर्म प्रचारक विबुधवृन्द बहु उन्नत चेता ।
धीर वीर धीमान धराधिप नाना नेता ॥
अति अनुपम अभिनेता बने करते अभिनय हैं जहाँ ।
है भूतल में साहित्य सा रंगमंच सुन्दर कहाँ ॥२॥

वह विधान जो है विधान वालों का साधन ।
वह विवेक जो है विवेकमय मानस का धन ॥
वह सुनीति जो नीतिमान की है रुचि न्यारी ।
पूत प्रीति वह, प्रीतिमान की जो है प्यारी ॥
भव में भव हितकर अन्य जो वर विचार वरणीय हैं ।
वे सब साहित्य समुद्र के रत्न निकर रमणीय हैं ॥६॥

स्वर व्यंजन आकलित अखिल पद है अवलम्बन ।
रुचिकर रुचिर विचारमयी रचना है मण्डन ॥
अतुल विभव है भाव उक्ति सरसा है सम्बल ।
है वर बुद्धि प्रसूत प्रखर प्रतिभा समधिक बल ॥
संसार सार साहित्य का रस सहजात निजस्व है ।
कविता है जीवन सहचरी कवि जीवन सर्वस्व है ॥१०॥

चितौड़ की एक शारद रजनी

[चतुष्पदी]

मयंक मृदु मंद हँस रहा था ।
असीम नीले अमल गगन में ॥
सुधा अलौकिक बरस रहा था ।
चमक रहा था नखत्र-गन में ॥ १ ॥

सुरंजिता हो रही धरा थी ।
खिली हुई चारु चाँदनी से ॥
रजत-मयी हो गई बिभा थी ।
कला कुमुदिनी-विकासिनी से ॥ २ ॥

दसो दिशा दिव्य हो गयी थी ।
सुदुग्ध का स्रोत बह रहा था ॥
नभापगा भी प्रभा-मयी थी ।
प्रवाह पारद उमड़ रहा था ॥ ३ ॥

चमक रहे थे असंख्य तारे ।
सुदीप्ति सब ओर ढल रही थी ॥
विमुग्ध-कर ज्योति-पुंज धारे ।
अपार आभा उथल रही थी ॥ ४ ॥

पद्य-प्रमोद

सुअर्बली शैल के शिखर पर ।

असंख्य हीरे ढलक रहे थे ॥

प्रकाश-मण्डित मयंक के कर ।

अपार छवि से छलक रहे थे ॥ ५ ॥

सुदूर विस्तृत विशाल गिरिवर ।

सुज्योति संचित जगा रहा था ॥

अपूर्व कल-कान्ति-युक्त कलेवर ।

रजत जटित जगमगा रहा था ॥ ६ ॥

विचित्र तरु-पत्र की छटा थी ।

प्रदीप्ति से दीप्तिमान होकर ॥

विराजती स्वच्छ शुभ्रता थी ।

हरीतिमा का विकास खोकर ॥ ७ ॥

प्रकाश के हैं कढ़े फुआरे ।

प्रदीप्त भूतल विदार करके ॥

कि हैं प्रभा से गये सँवारे ।

समस्त पादप प्रदेश भर के ॥ ८ ॥

सुज्योति-सम्पन्न थीं लतायें ।

किरण-मयी बेलियाँ हुई थीं ॥

हरी भरी श्याम दूर्वायें ।

प्रकाश से शुभ्र हो गई थीं ॥ ९ ॥

समस्त गिरि-शृंग का हिमोपल ।

विचित्रता से दमक रहा था ॥

हरेक तृण था हुआ समुज्ज्वल ।

समस्त रजकण चमक रहा था ॥ १० ॥

चित्तौड़ की एक शारद रजनी

सरित-सरोवर समूह का जल ।

बना हुआ दिव्य, था भलकता ॥

सुबीचियों-बीच स्वच्छ उज्ज्वल ।

प्रकाश का बिम्ब था ढलकता ॥ ११ ॥

हरी भरी भूमि का सरोवर ।

सुभव्य था चारुता बड़ी थी ॥

रजत बनाई विशाल चादर ।

सुशष्प के मध्य में पड़ी थी ॥ १२ ॥

अनेक छोटे बड़े जलाशय ।

जहाँ तहाँ थे अजब दमकते ॥

प्रदीप्त नभ में नक्षत्र कतिपय ।

सतेज हैं जिस तरह चमकते ॥ १३ ॥

अनेक सितकर प्रदीप्त निर्भर ।

असंख्य मोती उछालते थे ॥

निसार करके कवीक पति पर ।

उमंग अपनी निकालते थे ॥ १४ ॥

तमोमयी शैल कन्दरायें ।

महा तिमिर-वान भाड़ियाँ सब ॥

कहो न क्यों आज जगमगायें ।

स्वयं तमा है प्रभा-मयी जब ॥ १५ ॥

बना हुआ था विशाल जंगल ।

प्रकाश के पुंज का अखाड़ा ।

मयंक-कर ने जहाँ सदल बल ।

प्रचंड तम-तोम को पछाड़ा ॥ १६ ॥

पद्य-प्रमोद

प्रसून पर काश के बिभावस ।

विचित्र है चारुता दिखाती ॥

अमल धवल केश राशि पावस ।

रची गई ज्योति की जनाती ॥ १७ ॥

विविध बगीचे अनेक उपवन ।

विकाश से हैं महा विकाशित ॥

कि मेदिनी पर कला-निकेतन ।

अनन्त तजकर हुआ प्रकाशित ॥ १८ ॥

न एक सित पुष्प ही मनोहर ।

ससाम्य-बश ओप में बढ़ा था ॥

हरे असित नील पुष्प-चय पर ।

प्रकाश का रंग ही चढ़ा था ॥ १९ ॥

समस्त क्यारी कलित हुई थी ।

प्रभा बलित थी अखिल प्रणाली ॥

सुधा सरस कुंज में चुई थी ।

दमक रही थी मलीन डाली ॥ २० ॥

कटी छँटी बेलि बूटियों पर ।

छँटी हुई ज्योति टिक रही थी ॥

हरी भरी बाँस खूँटियों पर ।

किरण अछूती छिटक रही थी । २१ ॥

खिले हुए फूल पर न केवल ।

कमाल थी कौमुदी दिखाती ।

मुँदे हुए थे अनेक उत्पल ।

जिन्हें कला थी मुकुट पिन्हाती ॥ २२ ॥

चित्तौड़ की एक शारद रजनी

समस्त समतल विशाल प्रान्तर ।

प्रकाशमय थे बिछी रुई थी ॥

सु अंकुरित खेत खेत होकर ।

प्रभा परम पल्लवित हुई थी ॥ २३ ॥

प्रवेश करके विशद नगर में ।

प्रकाश तमराशि खो रहा था ॥

डगर डगर औ बगर बगर में ।

जगर मगर आज हो रहा था ॥ २४ ॥

प्रशस्त प्राकार मन्दिरों में ।

फटिक शिला शुभ्र लग गई थी ॥

समग्र आँगन घरों दरों में ।

नवल धवल ज्योति जग गई थी ॥ २५ ॥

अटारियाँ खिड़कियाँ मनोहर ।

प्रकाश की कोठियाँ बनी थीं ॥

सुभग मुँडेरों सु कँगनियों पर ।

लगी हुई बज्र की कनी थी ॥ २६ ॥

हुए छतों पर विचित्र टोने ।

समस्त छाजन ज्वलित हुई थी ॥

कला फिरी थी हरेक कोने ।

भलक रही भूमि की सुई थी ॥ २७ ॥

सकल गली ओ समस्त कूँचे ।

चमक दमक चारु थे दिखाते ॥

चऊतरे चौखटे समूचे ।

अजीब थे आज जगमगाते ॥ २८ ॥

पद्य प्रमोद

बना हुआ ठाट हाट का था ।

रजतमयी सब दुकान ही थी ॥

सुचमकियों से बसन ढँका था ।

मिठाइयों पर सुधा बही थी ॥ २६ ॥

भया प्रभावान भव्य भाजन ।

हुआ विभूषण सुरत्न-मण्डित ॥

कलाबतू बदला बना सन ।

अखिल उपस्कर हुए अलंकृत ॥ ३० ॥

गिलम गलीचे मलिन दरी भी ।

चमक दमक चारुता-मयी थी ॥

पड़ी सड़क में कुकंकरी भी ।

प्रभावती पोत बन गई थी ॥ ३१ ॥

सुधा धवल धाम ही न केवल ।

हुआ प्रभा-पुञ्ज से सुशोभन ॥

बुरा निकेतन महा मलिन थल ।

सुदर्पणों सा बना सुदर्शन ॥ ३२ ॥

रचा हुआ घास का कुघर भी ।

प्रदीप्त था, ज्योति भर रही थी ॥

पड़ी भोपड़ी समस्त पर भी ।

कला करामात कर रही थी ॥ ३३ ॥

कलित किरण थी प्रदीप्ति-बोरी ।

प्रकाश में तेज सन गया था ॥

जकी चकी थी खड़ी चकोरी ।

कबीकपति भानु बन गया था ॥ ३४ ॥

चितौड़ की एक शारद रजनी

सुचाँदनी की चटक निकाई ।

पयोधि का कान काटती थी ॥

जिसे बड़े चाव से बिलाई ।

बिचार कर दूध चाटती थी ॥ ३५ ॥

निशा हुई थी महा समुज्ज्वल ।

समस्त नभ श्वेत था दिखाता ॥

कभी अचानक बिहङ्ग का दल ।

प्रभात का राग था सुनाता ॥ ३६ ॥

दिगन्त में भूमि तल गगन पर ।

त्रिलोक की स्वेतता बसी है ॥

वितुल कलित-कीर्ति-रूप धरकर ।

स्वयंभु की या प्रकट लसी है ॥ ३७ ॥

महा सिताभा असीम नभ-तल ।

प्रदीप्त करके हुई सुसावित ॥

निमग्न करके समग्र भूतल ।

कि है पयोराशि पय प्रवाहित ॥ ३८ ॥

अमल सतोगुण विशुद्ध उज्ज्वल ।

स्वरूप धर कर प्रकट दिखाया ॥

विभा बलित सित सरोज दल या ।

बसुंधरा पर गया बिछाया ॥ ३९ ॥

कलितकला जिस रुचिर नगरपर ।

सुकान्ति का है प्रसार करती ॥

उसी नगर में कहा महा मनोहर ॥

बिभावती एक है सुधरती ॥ ४० ॥

पद्य-प्रमोद

रचे गुणी जन इसी धरा पर ।

अनेक प्रासाद हैं चमकते ॥

सदैव जिनके कलश रुचिर तर ।

दिनेश की भाँति हैं दमकते ॥ ४१ ॥

इन्हीं सुप्रासाद-पंक्ति-भीतर ।

अपूर्व है एक हर्म्य शोभित ॥

विचित्र जिसकी बनावटों पर ।

न दृष्टि किसकी हुई प्रलोभित ॥ ४२ ॥

इसी विशद हर्म्य में मनोहर ।

प्रकोष्ठ है एक अति सुसज्जित ॥

जिसे कलाधर कला निराली ।

अजस्र थी कर रही सुरंजित ॥ ४३ ॥

शनैः शनैः एक जन उसी पर ।

प्रशान्त-नाति से टहल रहा था ॥

प्रफुल्ल मुख कान्ति-मान होकर ।

प्रसाद की ओर दल रहा था ॥ ४४ ॥

विशाल-भुज-वक्ष यह युवा जन ।

मयंक की माधुरी मनोहर ॥

विलोक कर था महा मुदित मन ।

अपूर्व—उच्छ्वास—पूर्ण—अन्तर ॥ ४५ ॥

प्रकोष्ठ की कारु-कार्य-वाली ।

खुली रुचिर सित-शिला-रची छत ॥

सकल-उपस्कर-सुरत्न-शाली ।

सुवर्ण-चूड़ परम समुन्नत ॥ ४६ ॥

चितौड़ की एक शारद रजनी

मयंक कर से चमक दमक कर ।

मनोज्ञतर दृष्टि थे दिखाते ॥

जिन्हें युवा एक दृष्टि लख कर ।

प्रमोद-पय-राशि पैर जाते ॥ ४७ ॥

जड़े हुए दिव्य रत्न सुन्दर ।

निकालते ज्योति थे निराली ॥

बना युवा मन्त्र-मुग्ध लख कर ।

हुई हृदय देश में दिवाली ॥ ४८ ॥

शिखर समुज्ज्वल, प्रदीप्त प्रान्तर ।

अनेक पादप प्रकाश-मण्डित ॥

सुकर-समाच्छन्न बहु सरोवर ।

विपुल बगीचे विभा-अलंकृत ॥ ४९ ॥

प्रकोष्ठ से दृष्टि पड़ रहे थे ।

समस्त का कुछ अजब समा था ॥

युवा हृदय मध्य गड़ रहे थे ।

सुदृश्य प्रति रोम में रमा था ॥ ५० ॥

कभी युवा देखता गगन-तल ।

कभी धरातल विमुग्ध होकर ॥

कभी धवल धाम हर्म्य रज्ज्वल ।

कभी समुद्दीप्त, शुभ्र परिसर ॥ ५१ ॥

पवन सुधा-सिक्त मन्द-गामी ।

सकल कला-पूर्ण कल कलाधर ॥

सुचंद्रिका चारु-कीर्ति-कामी ।

दिशा महा मञ्जु अति मनोहर ॥ ५२ ॥

पद्य-प्रमोद

युवा उन्हीं में रमा हुआ था ।
शरीर की सुधि नहीं रही थी ॥
प्रमोद-पंकज खिला हुआ था ।
विनोद की वेलि लहलही थी ॥ ५३ ॥
प्रतीच्य आकाश में इसी छन ।
हुआ प्रकट एक दाग काला ॥
शनैः शनैः वह बना लुद्र घन ।
पुनः हुआ मञ्जु मेघमाला ॥ ५४ ॥
अभी क्षितिज लुद्रभाग तजकर ।
न था जलद व्योम मध्य छाया ॥
कि बीच ही वायु ने सम्हलकर ।
उसे वहीं धूल में मिलाया ॥ ५५ ॥
परन्तु पल में पुनः उसी थल ।
हुए जलद-खण्ड दृष्टिगोचर ॥
हुआ प्रथम लौं सुपुष्ट दल बल ।
शनैः शनैः वर्द्धमान हो कर ॥ ५६ ॥
उठी हवा भी उसी तरह फिर ।
तुरंत जिससे जलद गया टल ॥
पयोद आया पुनः पुनः घिर ।
पुनः पुनः वायु भी पड़ी चल ॥ ५७ ॥
रही दशा यह नियत समय तक ।
पयोद दलता रहा प्रभञ्जन ॥
परन्तु पीछे हुआ अचानक ।
सकल-गगन-प्रान्त में प्रबल धन ॥ ५८ ॥

चित्तौड़ की एक शारद रजनी

जहाँ तहाँ इस समय गगन में ।

विपुल जलद-खण्ड थे बिचरते ॥

घरों, दरों, सैकड़ों सहन में ।

कलित कौमुदी मलीन करते ॥ ५६ ॥

कहीं हुए पर्वताकार घन ।

कहीं सदल बल विहर रहे थे ॥

कहीं गये थे महा निविड़ बन ।

कहीं खण्डशः बिचर रहे थे ॥ ६० ॥

शनैः शनैः हो गई दशा यह ।

लगा कलाधर मलीन होने ॥

न रह गया था प्रदीप्त नभ वह ।

चला तिमिर था प्रकाश खोने ॥ ६१ ॥

प्रथम गगन के विपुल थलों पर ।

परास्त था वायु से हुआ घन ॥

परन्तु इस काल शान्त बन कर ।

स्वयं हुआ था विजित प्रभञ्जन ॥ ६२ ॥

प्रचण्डता जिस प्रबल पवन की ।

सकल-जलद-जाल छिन्न करती ॥

न शक्ति उसमें रही शमन की ।

भला न क्यों शान्त वह बिचरती ॥ ६३ ॥

विशद-गगन के अधिक थलों पर ।

सजल जलद इस समय जमा था ॥

वहाँ चमकता न था कलाधर ।

न चाँदनी का वहाँ समा था ॥ ६४ ॥

पद्य-प्रमोद

कभी कभी भेद कर सघन घन ।

प्रकाश निज कान्ति था दिखाता ॥

कभी कभी यामिनी-विमोहन ।

भलक जलद-जाल-बीच जाता ॥६५॥

परन्तु अब भी विशद गगन के ।

बचे हुए थे विभाग ऐसे ॥

जहाँ छबीले नछत्र-गण के ।

प्रकोष्ठ थे दिव्य पूर्व जैसे ॥६६॥

सु-चाँदनी वैसीही यहाँ थी ।

प्रकाश था पूर्व लौ मनोहर ॥

सुधा सरस वैसीही बनी थी ।

प्रदीप्त था पूर्ववत् कलाधर ॥६७॥

परन्तु ऐसे विभाग में भी ।

धवल जलद-खण्ड फिर रहे थे ॥

कई निबिड़ वारि-बाह से भी ।

विचित्रता साथ घिर रहे थे ॥६८॥

तथापि दो एक भाग अब भी ।

बचे हुए थे प्रपञ्च घन से ॥

नछत्र-गण थे सशंक तब भी ।

प्रफुल्लता दूर थी बदन से ॥

कभी किसी भाग का प्रभञ्जन । ॥६९॥

प्रचण्डता पूर्ववत् दिखाता ॥

परन्तु अति दीर्घ काय दृढ़ घन ।

प्रयत्न उसका विफल बनाता ॥७०॥

चित्तौड़ की एक शारद रजनी

विशेषतः वात अब अबल था ।

वरंच था वह घनानुसारी ।

अतः जलद-जाल अति प्रबल था ।

बना हुआ था अक्षिष्ट-कारी ॥७१॥

समय हुआ और ही बदल कर ।

रही न सद्बुद्धि अब सँघाती ॥

कला बनाता मलीन जलधर ।

कला जलद को कलित बनाती ॥७२॥

कवीकपति का विलोप साधन ।

जलद तटल का प्रधान व्रत था ॥

परन्तु घन को गगन-विभूषण ।

सँवारने में समोद रत था ॥७३॥

विशद-गगन-बीच जो पयोधर ।

कभी कहीं भी न था दिखाता ॥

वही विविध रूप रंग रच कर ।

दिगंत में भी न था समाता ॥७४॥

सरस सुधा सिक्त शशि समुज्ज्वल ।

समीर से सेव्यमान होकर ॥

शनैः शनैः घेर कर गगन-तल ।

हुआ अप्रति-हृत-प्रताप जलधर ॥७५॥

सकल जलद-जाल की क्रिया यह ।

विलोकता आदि से युवा था ॥

परन्तु इस काल था व्यथित वह ।

प्रसन्न आनन मलिन हुआ था ॥७६॥

रुक्मिणी-सन्देश

[गेला]

परम रम्य था नगर एक कुण्डनपुर नामक ।

जहाँ राज्य करते थे नृप-कुल-भूषण भीष्मक ॥

सकल-सम्पदा-सुकृति-धाम था नगर मनोहर ।

वहाँ उलहती बेलि नीति की थी अति सुन्दर ॥ १ ॥

एक सुता थी परम-दिव्य उनकी गुणवाली ।

रूप-राशि से ढँकी अलौकिक साँचे ढाली ॥

थी अपूर्व मुख-ज्योति छलकती थी छवि न्यारी ।

नाम रुक्मिणी था, वह थी सबकी अति प्यारी ॥ २ ॥

जब विवाह के योग्य हुई यह कन्या सुन्दर ।

कलह-बीज-अंकुरित हुआ गृह मध्य भयङ्कर ॥

नृपति, द्वारकाधीश-कृष्ण को देकर कन्या ।

उसे चाहते थे करना अवननी—तल—धन्या ॥ ३ ॥

रुक्म नाम का एक पुत्र भूपति-वर का था ।

परम क्रूर, क्रोधी महान, वह कुटिल महा था ॥

सहमत वह नहीं हुआ नृपति से पूर्ण रूप से ।

उसने निश्चित किया ब्याह शिशुपाल भूप से ॥ ४ ॥

यतः रुक्म था बड़ा उग्र अतिशय हठकारी ।

शक्तिमान भुवराज, राज्य का भी अधिकारी ॥

अतः नृपतिने व्यर्थ बखेड़ा नहीं बँदावा ।

माना उसका कष्ट यदपि वह उन्हें न भाया ॥ ५ ॥

रुक्मिणी-सन्देश

उक्त नृपति के निकट रुक्म ने तिलक पठा कर ।

व्याह कार्य के लिये किया लोगों को तत्पर ॥

तिथि निश्चित हो गयी बात यह सबने जानी ।

आता है व्याहने चेदि भूपति अभिमानी ॥ ६ ॥

विविध-वरो, गायकों, विविध गुणियों के द्वारा ।

सुयश श्रवण करके विचित्र, अनुपम अति प्यारा ॥

यतः हृदय दे चुकी हाथ में थीं यदुवर के ।

अतः व्यथित अति हुई रुक्मिणी यह सुन करके ॥ ७ ॥

पर सम्भव था नहीं रुक्म का सीधा होना ।

उससे कुछ कहना था निज गौरव का खोना ॥

अतः हुई वे गुप्त - भाव से उद्यम शीला ।

वृथा न रोयीं, औ न बनाया मुखड़ा पीला ॥ ८ ॥

सोचा यदि मैं नीति-निपुण गुण-निधि प्रभुवर को ।

परम विद्वत्, करुणा-निधान, यदुवंश-प्रवर को ॥

सकल हृदय का भाव स्वच्छता से जतलाऊँ ।

औ लिख कर सन्देश यहाँ का सकल पठाऊँ ॥ ९ ॥

तो अवश्य वे अखिल आपदा को ढालेंगे ।

मर्यादा निश्चय अपने कुल की पालेंगे ॥

शमन करेंगे ताप हृदय की व्यथा हरेगे ।

सकल हमारी मनोकामना सफल करेंगे ॥ १० ॥

जी में ऐसा सोच लिख एक पत्र उन्होंने ।

जिसके अक्षर आँखों पर करते थे टोने ॥

अपना आशय प्रकट किया यों सम्मत होकर ।

हे करुणा-कर प्रणत-पाल, यदुर्वश-दिवाकर ॥ ११ ॥

पद्य-प्रमोद

मैं न कहूँगी एक नृपति की कन्या हूँ मैं ।

मुझे लाज लगती है जो परिचय यों दूँ मैं ॥

बरन कहूँगी हूँ चकोरिका चन्दन-बदन की

प्रभु मैं हूँ चातकी किसी नव-जलधर-तनकी ॥१२॥

पावन पद-पङ्कज-पराग की मैं भ्रमरी हूँ ।

अतिशय अनुपम-रूप-राशि-पानिप-सफरी हूँ ॥

मैं कुरंगिनी हूँ पवित्र कल-कंठ नाद की ।

मैं समुत्सुका-रसना हूँ प्रभु सुयश-स्वाद की ॥१३॥

जैसे देखे बिना रूप भी सौरभ का जन ।

हो जाता है सानुराग सब काल सुखित वन ॥

वैसे ही प्रभु-रूप बिना देखे अति प्यारा ।

हुई हृदय से सानुराग हूँ तज भ्रम सारा ॥१४॥

सुचरित, सद्गुण, सुकृति, आपकी है महि-व्यापी ।

इन सबने ही प्रभु सुमूर्ति है उर में थापी ॥

रूप-जनित अनुराग क्षणिक है, अस्थायी है ।

रूप गये औ मोह नसे नहिं सुखदायी है ॥१५॥

पर सद्गुण-सुचरित्र जनित अनुराग सदा ही ।

अचल अटल है अतः वही है अति उर-ग्राही ॥

सुकर उसी के मैं उमंग के साथ बिकी हूँ ।

निश्चल, नीरव, समुद, उसी के द्वार टिकी हूँ ॥१६॥

एक मूढ़ जन इस मेरे अनुराग-स्रोत को ।

करके गौरव-होन प्रशंसित, प्रथित गोत को ॥

निज इच्छा अनुकूल चाहता है लौटाना ।

पर उसने यह भेद नहीं अब लौं प्रभु जाना ॥१७॥

रुक्मिणी-सन्देश

कौन फेर सकता प्रवाह है सुर-सरिता का ।

रोक कौन सकता है जलनिधि-पथ का नाका ॥

कौन प्रवाहित कर सकता है यत्रों द्वारा ।

पश्चिम दिशि में भानु-नन्दिनी की खर धारा ॥१८॥

प्रणय-राज्य में बल-प्रयोग अति कायरता है ।

मङ्गल-मय विवाह में कौशल पामरता है ॥

जिस परिणय का हृदय-मिलन उद्देश्य नहीं है ।

वह अवैध है विधि का उसमें लेश नहीं है ॥१९॥

जहाँ परस्पर-प्रेम पताका नहीं लहराती ।

वहाँ ध्वजा है कलह कपट की नित फहराती ॥

प्रणय-कुसुम में कीट स्वार्थ का जहाँ समाया ।

वहाँ हुई सुख और शान्ति की कलुषित काया ॥२०॥

यह प्रपंच सब अनमिल व्याहों से होते हैं ।

जो दम्पति-जीवन का अनुपम सुख खोते हैं ॥

अहह प्रभो ऐसा प्रण क्यों भ्राता ने ठाना ।

जिससे दुख में मुझको जीवन पड़े बिताना ॥२१॥

अब प्रभु तज नहीं अन्य हमारा है हितकारी ।

निरवलम्बिनी हो, मैं आई शरण तुम्हारी ॥

प्रभु-पद-नख की ज्योति हरेगी तिमिर हमारा ।

वही एक अवलम्बन है, है वही सहारा ॥२२॥

पवन बिना प्राणी, औमणि बिन फणि, जी जावे ।

यह सम्भव है त्राण बिना जल मछली पावे ।

है परन्तु यह नहीं कदापि संभव मैं जीऊँ ।

जो न प्रभु-कृपा-सुधा यथा-रुचि सादर पीऊँ ॥२३॥

पद्य-प्रमोद

तरु हरीतिमा नसे, उड़े विन पंख पखेरु ।
हीरा बन जावे, बहु उज्ज्वल होकर गेरु ॥
जल शीतलता तजे, त्याग गति करे प्रभञ्जन ।
तदपि न होगा मम विचार में कुछ परिवर्त्तन ॥२॥

नाथ समर्पित हृदय अन्य को कैसे दूँगी ।
हूँगी जो सेविका प्रभु-कमल-पग की हूँगी ॥
कभी अन्यथा नहीं करूँगी मैं न टलूँगी ।
विष खाऊँगी, प्राण तजूँगी, कर न मलूँगी ॥२॥

मैं हूँ परम अबोध बालिका प्रभु बुधवर हैं ।
मैं हूँ बहु दुखपगी आप अति करुणाकर हैं ॥
मैं हूँ कृपा-भिखारिणि प्रभु अति ही उदार हैं ।
मैं हूँ विपत्त-समुद्र पड़ी प्रभु कर्ण-धार हैं ॥२॥

जैसे मेरी लाज रहे मम धर्म न जावे ।
देव-भाग को दनुज न बल—पूर्वक अपनावे ॥
जिससे कलुषित बने नहीं मम जीवन सारा ।
होवे वही, निवेदन है प्रभु यही हमारा ॥२॥

इस प्रकार चीठी लिख वे चिन्ता में डूबीं ।
भेजूँ क्यों कर किसे सोच ए बातें ऊर्वीं ॥
छिपी नहीं यह बात रहेगी अन्त खुलेगी ।
उग्र रुक्म से कभी किसी की नहीं चलेगी ॥२॥

संभव है मम उपकारक को वह दुख देवे ।
उसे नाश करके सरवस उसका हर लेवे ॥
अतः उन्होंने एक योग्य ब्राह्मण के द्वारा ।
पत्र द्वारिका नगर भेजना भला विचारा ॥२॥

रुक्मिणी-सन्देश

क्योंकि विप्र का किसी काल में बध नहीं होता ।

वह अव्याहत गति में है बहु विघ्न डुबोता ॥
सखियों द्वारा सब बातें पहले बतलाई ।

फिर बुलवा कर उसे आप कोठे पर आई ॥३०॥
बातायन में बैठ पत्र को कर में लेकर ।

भुकों विप्र के देने को अति आतुर होकर ॥
दोनों कर से बसन इधर द्विज ने फैलाया ।
लेने को वह पत्र, शीश हो चकित उठाया ॥३१॥

इसी काल का चित्र हुआ है अंकित सुन्दर ।
देखो द्विज का भाव, रुक्मिणी बदन मनोहर ॥
यद्यपि धीर, गंभीर, मुखाकृति राज-सुता की ।
लोचन स्थिरता, व्यंजक है उर की दृढ़ता की ॥३२॥

तदपि सामयिक, उत्सुकता, शंका, चञ्चलता ।
अङ्कित है की गयी चित्र में सहित निपुणता ॥
शीश अचानक लज्जा-शीला का खुल जाना ।
परम शीघ्रता वश सम्हालने वस्त्र न पाना ॥३३॥

पत्र-दान की तन्मयता को है जतलाता ।
अति सशंकता, चंचलता है प्रकट दिखाता ॥
जो असावधानता हुई थी आतुरता से ।
उसको भी है वही बताता चातुरता से ॥३४॥

कसी हुई कटि, लोटा डोरी काँधे पर की ।
पत्र ग्रहण की रीति, भाव-भंगी द्विज-वर की ॥
यात्रा की तत्परता को है सूचित करती ।
उर में नाना भाव सरलता का है भरती ॥३५॥

सतीसीता

[षट्पद]

वह शरद ऋतु के अनूठे पंकजों सा है खिला
तेज है उसको अलौकिक कान्ति-मानों सा मिला ॥
वह सुधा कमनीय अपने कान्त हाथों से पिला ।
मर रही सुकलत्रता को है सदा लेता जिला ॥
इस कलंकित मेदिनी में है सतीपन वह रतन ।
पा जिसे है पूत होता कामिनी-अपुनीत-तन ॥ १ ॥

वह गगन यह है जहाँ उठता नहीं अविचार-घन ।
है नहीं जिसमें कलह-रज लेश यह वह है पवन ॥
है नहीं जिसमें कपट का कीट यह वह है सुमन ।
है पड़ी जिस पर न मतलब छींट यह वह है वसन ॥
है न जिसमें मान मद कटता यही है वह सुफल ।
यह सलिल है वह, नहीं जिसमें मनो-मालिन्य-मल ॥ २ ॥

सुख-सदन का दीप यह है नीति-निधि का बिधु विमल ।
यह परस्पर-प्यार-सर के अंक का है कल कमल ॥
बर गुणों, विनयादि की उत्पत्ति का है मञ्जु थल ।
प्रेम के अभिराम-व्रत का है बड़ा ही दिव्य-फल ।
यह सुभावुकता-सरोजिनि के लिये है भानु कर ।
पूत-चरितावलि मही-रुह के लिये है वारिधर ॥ ३ ॥

सतीसीता

हैं सुलभ जातीं इसी के हाथ से जग-उलझनें ।
स्वर्ग से, जंजाल में डूबे सदन, इससे वनें ॥
दुख-भरे परिवार इससे ही हुए मन-भावने ।
पूत-दम्पति-सुख इसीसे ही सुधा में हैं सने ॥
ज्ञान की गरिमा-रंगी भव के प्रपंचों की जयी ।
जाति बनती है इसी की गोद में गौरवमयी ॥ ४ ॥

राजती जिनमें सतीपन की रही पूरी कला ।
पा जिन्हें सुपुनीत होकर देश यह फूला फला ॥
गा चरित जिनका हुआ बहुकामिनी-कुल का भला ।
अंक में जिसके सुगौरव आर्यगण का है पला ॥
हो गई भारतधरा में हैं कई ऐसी सती ।
हैं उन्हीं में एक मेदिनि-नन्दिनी शुचि रुचिवती ॥ ५ ॥

बंक भौहों को बना जब कोप धाता ने किया ।
जब पिता ने रामको चौदह बरस का बन दिया ॥
राज-श्री ने फेर जब उनसे बदल अपना लिया ।
तज सर्की उन दुर्दिनों में भी नहीं उनको सिया ॥
कंज से कमनीय कोमल गात पर आँचें सहीं ।
किन्तु अपने प्राणपति की वे बनी छाया रहीं ॥ ६ ॥

राज-सुख था, थे जनक से तात, दशरथ से ससुर ।
सम्पदा सुरलोक की थी, औ विभव भी था प्रचुर ॥
कौसिला सी सास का शुभ अङ्क था अति ही मधुर ।
मुख-कमल था जोहता उत्कण्ठ होकर सर्व पुर ॥
किन्तु पति को छोड़ कर वे रह सकीं गृह में नहीं ।
क्या कलाधर त्याग कर है कौमुदी रहती कहीं ॥ ७ ॥

पद्य-प्रमोद

सुर सदन की सी सुहाती थी कुटो पत्तों बनी ।
 व्यञ्जनों से थी सरसता कंद मूलों में घनी ॥
 शीश पर फैली लतायें थीं वितानों सी तनी ।
 धूप लगती थी उन्हें राका-रजनि की चाँदनी ॥
 श्याम-घन सी तन-छटा अवलोक आँखों बर बदन ।
 था हुआ-नन्दन-विपनि सा मुग्धता आधार बन ॥ ८ ॥
 काल पाकर वे हुईं निज प्राण-प्यारे से अलग ।
 प्रेम में उनके गया लंकेश सा लोकेश पग ॥
 खुल गया उनके लिये सब राज-सुख का मंजु पग ।
 चूमने बहु सम्पदा उनका लगी फिर कंज-पग ॥
 दृग उठाकर किन्तु उनकी ओर ताका तक नहीं ।
 रात दिन बनके तपस्वी के लिये रोती रहीं ॥ ९ ॥

जिस दिवस रघुवंश-मणि उर में हुआ भ्रमका उदय ।
 वह दिवस उनके लिये था और भी आवेग-मय ॥
 आँख में आँसू नहीं था पर विहरता था हृदय ।
 क्षोभ औ संताप से थी बन गई धरती निरय ॥
 किन्तु ऐसे काल में भी वे नहीं बिचलीं तनक ।
 है निखरती और भी पड़ आँच में आभा कनक ॥ १० ॥

है जिसे अपनी पड़ी, है प्रेमिका सखी न वह ।
 प्राण-पति कहती जिसे हैं, है उसीका प्राण यह ॥
 है वृथा जीना, मलिनता जो गयी चितबीच रह ।
 क्या नहीं सकती सती पति के लिये भू मध्य सह ॥
 सोच यह पति की प्रतीति निमित्त तन ममता तजी ।
 कूद-पावक-मध्य, उसमें से कहीं पुष्पों सजी ॥ ११ ॥

सतीसीता

आह ! आया बहै दिवस भी जब उन्हें पति ने तजा ।
जा बसीं अकेली धिपिन के बीच जब जनकाङ्गजा ॥
छोड़ सारा राजसुख कनकायतन फूलों सजा ।
जब बिताने वे लगीं निजबार दुख किंगरी बजा ॥
जब सगा वे खोज कर भी थीं नहीं पाती कहीं ।
देख जब उनकी दशा बन पत्तियाँ रोती रहीं ॥ १२ ॥

उन दिनों भी इस सती का राम-भय-जीवन रहा ।
जब कहा कुछ तब यही अपने कमल मुख से कहा ॥
राज्य-पालन पंथ में है लोक-रंजन-व्रत महा ।
है वही नृप, रख इसे, जिसने मही पर यश लहा ॥
जो प्रथित था औ उचित था है वही पतिने किया ।
है पतित, निन्दित, नृपति वह जो कलंकित हो जिया ॥ १३ ॥

जो नरोंसा ही नृपति भी मोह-ममता में फँसे ।
प्यार सुत-चित-नारिका, उरमें उन्हीं सा जो बसे ॥
जो न उसमें आत्मबल हो जो न वह चित को कसे ।
तो न है नृप वह, वृथा सिर पर मुकुट उसके लसे ॥
है वही नर-नाथ जो है न्याय-पथ पहचानता ।
आत्म-हित से लोक-हित को जो महत है मानता ॥ १४ ॥

स्वार्थ का ही अब समय है, प्यास समता है बढ़ी ।
घिर घटा है उर गगन में आत्म-गौरव की चढ़ी ॥
है अधिक संभव कहें सुकुमारियाँ लिक्खी पढ़ी ।
जानकी-सम्बन्धिनी बातें बहुत सी हैं गढ़ी ॥
हों गढ़ी, पर आत्म सुख त्यागे बिना तज कामना ।
है न होता लोक-हित होती है नित अवमानना ॥ १५ ॥

सुतवती सीता

[छापै]

कुसुम सु कोमल अल्प-वयस दो बालकवाली ।
रहित केश-विन्यास प्रकृति-पावन कर पाली ॥
एक आध गहने पहने साधारण-वसना ।
मुख-गंभीरता नहिं जिसकी कह सकती रसना ॥
यह देवि स्वरूपा कौन है बन-भूतल में भ्राजती ?
कुसुमित पौधों के मध्य में क्या है रमा विराजती ? ॥ १ ॥

बन निवास के समय बहु विटप निम्न निरन्तर ।
जो अवलोकी गई पति प्रणयरता प्रचुर तर ॥
तरु-अशोक के तले पुरी लंका में प्रतिपल ।
जिसका विकसित हुआ अलौकिक चारुचरित बल ॥
उस तपो भूमि में, जहाँ से रामचरित-धारा बही ।
यह उसी सती की अति रुचिर मातृ-मूर्ति है लस रही ॥ २ ॥

निकट विलसते लव कुश नामक युगल तनय हैं ।
भोले भाले परम सरलता-निधि मुदमय हैं ।
पति-वियोग-विधुरा व्यथिता के प्रिय सम्बल हैं ।
दुख-पयोधि में विवश पतित के पोत युगल हैं ॥
परितापवन्त चित सुतरुहित युग कलसे हैं सलिल मय ।
तम वलित एक उर सदन के ज्योति मान हैं दीप द्वय ॥ ३ ॥

सुतवती सीता

अग्रज को अवलोक लिये एक कुसुम मनोहर ।
फिर करते आलाप देख जननी से प्रिय तर ॥
हुआ कुसुम के लिये द्वितीय बालक भी चंचल ।
औ जा बैठा पुष्प बेलि ढिग मंद मंद चल ॥
प्रिय सुमन तोड़ने के समय जो सुषमा मुख पर लसी ।
वह अति अनुपम है प्रात रविप्रभा कमलपर आ बसी ॥४॥

कुसुम लाभ, उसके अवलोकन का विनोद मिल ।
अति सुन्दरता संग उठा है आनन पर खिल ॥
क्या राका-पति अंक विकचता उफन पड़ी है ।
अथवा खिले गुलाब में सरसता उमड़ी है ॥
नन्दन कानन के अति कलित विकसित किसी प्रसून पर ।
अथवा अनुपमता संग लसी स्वर्ग ज्योति कमनीय तर ॥५॥

सम्मुख पाकर कुसुम वान बालक को सीता ।
हस्त कमल के साथ उसे पकड़े हो प्रीता ॥
जिस रसालता मृदुता संग हैं समालाप-रत ।
हो सकता है वह भावुक जन को ही अवगत ॥
अवलोक वदन गम्भीरता उठी तर्जनी कला मय ।
कलनीय कान्त भावों बलित नहीं होता किसका हृदय ॥६॥

माता है मानव-जीवन की नींव जमाती ।
उसे पूत उन्नत, उदार है वही बनाती ॥
ज्यों सोनार भूषण-स्वरूप का है निर्माता ।
त्यांही है माता-विचार जन-हृदय-विधाता ॥
बालक-उर मृदु महि मध्य जो मा बोती है बीज चय ।
फल बहु विधि लाता है वही हो अंकुरित यथा समय ॥७॥

पद्य-प्रमोद

सिय मुख पर कर्तव्य बुद्धि यह बहु व्यंजित है ।
 उससे उसकी गुरु गंभीरता अति रंजित है ॥
 जो प्रसून उनका बालक है उन्हें दिखाता ।
 मंजुल वचन वही उनके मुख पर है लाता ॥
 वे जिस वत्सलता, सरसता से हैं बातें कह रहीं ।
 वह केवल अनुभवनीय है सुकथनीय कथमपि नहीं ॥८॥

क्या वह यह कहती हैं ऐ उर-उदधि-कलाधर ।
 तेरे जैसा ही प्रसून भी है अति सुन्दर ॥
 प्राणि-नयन-रंजिनी परम न्यारी छवि वाली ।
 तव कपोल अधरों सी है इसकी भी लाली ॥
 कोमलता इस पर वैसिही है लसती मन मोहती ।
 तेरे तनकी सुकुमारता जैसी हूँ अवलोकती ॥९॥

है समानता तुझमें और सुमन में इतनी ।
 किन्तु तात इसमें गुण गरिमायें हैं कितनी ॥
 बहुत प्यार कर सुर शिर पर सानंद चढ़ावे ।
 या पावों से मसल धूल में इसे मिलावे ॥
 पर यह सुवास तजता नहीं यों रहता है एक रस ।
 कैसेही उनमें बिरसता नहिं होती जो हैं सरस ॥१०॥

यह सुरभित केवल तिल ही को नहीं बनाता ।
 निज सुगंधि दे रज का भी है मान बढ़ाता ॥
 निज प्रफुल्लता से नर ही को नहिं पुलकाता ।
 बनता है बहु मधुप कीट का भी सु-दाता ॥
 जो हैं जग में सच्चे सुमन क्या कह उन्हें सराहिये ।
 उनकी गुणमयता बिकचता होती है सब के लिये ॥११॥

सुतवती सीता

यह प्रसून काँटों में ही रहता पलता है ।
पर कैसी इसमें सुमधुरता कोमलता है ॥
पड़ कुसंग में कभी नहीं वे निजता खोते ।
जो भावुक गंभीर उच्च रुचि के हैं होते ॥
जैसे समीप की पवनको यह करता है परिमलित ।
वैसे उनका सहवास भी होता है बहु गुण-वलित ॥१२॥

अल्प मोलका फूल, मुकुटमणि का है मण्डन ।
मोहित होता है उसपर पृथ्वी-पति का मन ॥
अमर-वृन्द-मस्तक पर है वह शोभा पाता ।
वह सुवर्ण भूषणको भी है सद्गुण बनाता ॥
क्यों ! क्या यह बतला दूँ तुझे ? सुन ऐ सुवन सुकौशली ।
सब काल रही सम्मानिता वसुधा-बीच गुणावली ॥१३॥

जितनी वस्तु अवनि-मण्डलमें है दिखलाती ।
उन सबको मैं विविध गुणों-पूरित हूँ पाती ॥
सुवन सभीको तुम विचार दृगसे बिलोक कर ।
उनके गुण-गण गहो, बनो कुल-कुमुद कलाधर ॥
कर-पल्लव शोभित कुसुम के सकल सुगुण पहले गहो ।
जिससे इनकी अवहेलना देवोपम शिशु से न हो ॥१४॥

मेरे जी में यही लालसा है ऐ प्यारे !
तेरे पिता-सदृश तेरे गुण होवें न्यारे ॥
प्रजा-पुंज-रंजन, सुनीति तेरी हो वैसी ।
पूत-चरित-रघुकुल-रवि की भू में है जैसी ॥
सब काल सत्य संकल्प, सत्कर्म-निरत संयत रहो ।
निज पूज्य जनकके तुल्य तव जीवन रहित कलंक हो ॥१५॥

वीरवर सौमित्र

[छापै]

कर करवाल लिये रण-भू में निधरक जाना ।
विध कर विशिखादिक से पग पीछे न हटाना ॥
लख कर रुधिर-प्रवाह और उत्तेजित होना ।
रोम रोम छिद गये न हड़ता चित की खोना ॥
गिरते लख करके लोथ पर लोथ देख शिरका पतन ।
नहिं विचलित होना अल्प भी हुआ देख शत-खंड तन ॥ १ ॥

तोपोंका लख अग्नि-काण्ड आकुल न दिखाना ।
न काँपना लख शिर पर से गोलों का जाना ॥
भिड़ना मत्त गयंद संग केहरि से लड़ना ।
कर द्वारा अति क्रुद्ध व्याल को दौड़ पकड़ना ॥
लख काल-वदन विकराल भी त्याग न देना धीरता ।
अकेले भिड़ना भट विपुल से यदपि है बड़ी बीरता ॥ २ ॥

किन्तु वीरता उच्चकोटि की और कई हैं ।
कथित वीरताओं से जो वर कही गई हैं ॥
करना स्वार्थ-त्याग क्रोध से विजित न होना ।
विपत-काल औ कठिन समय में धैर्य न खोना ॥
ऐसी ही कितनी और हैं द्वितीय भाँति की बीरता ।
जिनमें न चाहिये विपुल बल और न बल-शरीरता ॥ ३ ॥

वीरवर-सौमित्र

रामानुज में द्विधि वीरता है दिखलाती ।
 समय समय पर जो चित को है बद्धत लुभाती ॥
 पति बन जाता देख सिया थी जब अकुलाई ।
 सुत-वियोग वश जब कौशल्या थी बिलखाई ॥
 उस काल सुमित्रा-सुवन ने जो दिखलाया आत्मबल ।
 वह उनके कीर्ति-निकेत का कलित खंभ है अति अचल ॥४॥

तजा उन्होंने राज-भवन-सुख सुर-उर-प्राही ।
 तजी सुमित्रा-सदृश जननि सब भाँति सराही ॥
 आह ! न जिसका विरह कभी जन सम्मुख आया ।
 तजी उर्मिला जैसी परम सुशीला जाया ॥
 पर बाल-गीति को डोर में बँध भायपरँग में रँगे ।
 वह तज न सके प्रिय बन्धु को विपिन गये पीछे लगे ॥५॥

याँ उनका तिय-जननि-राज-सुख को तज जाना ।
 यती-भाव से बन में चौदह बरस बिताना ॥
 राम-सिया को मान पिता, माता और स्वामी ।
 बन में सह दुख विपुल बना रहना अनुगामी ॥
 संसार चकित-कर कार्य्य है मिलित मनोरम धीरता ।
 है यही आत्म-बल-संभवा परम अलौकिक वीरता ॥६॥

कुसुम चयन करते अलकावलि बीच लगाते ।
 जब सीता सँग विविध-कैलि-रत राम दिखाते ।
 उसी काल सौमित्र रुचिर उटजादि बनाते ।
 कर्त्तन करते मंजु शाल-शाग्या दिखलाते ॥
 सो किशलय पर जो यामिनी राम बिताते सुमुखि सह ।
 वह निशि व्यतीत करते लखन नखतावलि गिन सजग रह ॥७॥

पद्य-प्रमोद

कभी जानकी पट-भूषण पेटिका लिये कर :
वे दिखला पड़ते चड़ते गिरि दुरारोह पर ॥
लता, बेलि काटते, कटीले तरु छिनगाते।
सुपथ बनाते गहन बिपिन में कभी दिखाते ॥
पथ कभी सिय-कुटी से सरसि तक का हित गगनागमन ।
चिन्हित करते वे दीखते बाँध पादपों में बसन ॥८॥

यक तुषार से मलिन-चन्द्रिकावती रयन में ।
जब वह थी गत-प्राय बड़ी सरदी थी वन में ॥
वे थे देखे गये वारि सरसी में भरते ।
सीकरमय तृण-राजि-बीच बचकर पग धरते ॥
यक जलद-मयी यामिनी में शिर पर जलधारादि ले ।
चूती कुटीर के काज वे तृण, पत्ते लाते मिले ॥ ९ ॥

यह अति कोमल राज-कुँवर कुवलय-करलालित ।
सुवरन का सा कान्ति-मान सुख में प्रति पालित ॥
कुसुम-सेज पर शयन-निपुण, मृदु-भूतल-चारि ।
वर व्यंजन वर बसन वर विभव का अधिकारी ॥
जब कानन में था दीखना करते परम कठोर व्रत ।
तब अवगत था जग को हुआ वह कितना है राम-रत ॥१०॥

कपि-दल लेकर राम जलधि-तट पर जब आये ।
उसका देख कराल रूप कपि-पति अकुलाये ॥
सुन गर्जन आवर्त्त सहित लख तुंग तरंगें ।
हो बिलीन सी गई चमू की सकल उमंगें ॥
पर विचलित हुए न अल्प भी शूर-शिरोमणि श्री लखन ।
कर धनु, शायक, लेकर कहे परम ओजमय ये वचन ॥११॥

वीरवर सौमित्र

वही वीर है जो कर्त्तव्य-विमूढ़ न होवे ।
कार्य-काल को जो नहिं बन आकुल चित्त खोवे ॥
क्या है यह जलराशि कहो शर मार सुखाऊँ ।
या कर इसे प्रभाव-हीन घट तुल्य बनाऊँ ॥
पर मर्यादा का तोड़ना कभी नही होता उचित ।
इसलिये करो सुजतन, विवश हो करके न बनो दुचित ॥१२॥

इसी सुमित्रा-सुवन-कथन का सुफल हुआ यह ।
जो बारिधि था अगम गया गिरि से बाँधा वह ॥
उस पर से ही उतर पार सेना सब आई ।
फिर लंका पर धूम धाम से हुई चढ़ाई ॥
रण चिढ़ जाने पर लखन ने जो दिखलाया विपुल बल ।
वह अकथनीय है अगम है वीर-वृन्द में है विरल ॥१३॥

सुनकर धनु-टंकार मेदिनी थर्राती थी ।
दिग्दंती की द्विगुण दलक उठती छाती थी ॥
विशिख-वृन्द से नभ-मण्डल था पूरित होता ।
जो था दश दिशि बीच बहाता शोणित सोता ॥
प्रलय-बन्धि थी दहकती त्रिपुरान्तक थे कोपते ।
जिस काल वीर सौमित्र थे रणभू में पग रोपते ॥१४॥

अमर वृन्द जिसके भय से था थर थर कँपता ।
जो प्रचंड पूषण सा था रण-भू में तपता ॥
पाहन द्वारा गठित हुई थी जिसकी काया ।
विविध-भयंकर-मूर्ति-मती थी जिसकी माया ॥
वह परम साहसी अति प्रबल मेघनाद सा रिपु-दमन ।
जिसके कोपालन में जला धन्य वह सुमित्रा-सुवन ॥१५॥

पद्य-प्रमोद

बालमीक मुनि-पुंगव ने बदनाम्बुज द्वारा ।
चरित सुमित्रा-सुत का जो अति सरस उचारा ॥
वह नितान्त तेजोमय है अति ओज-भरा है ।
एक राम-जीवन-मय है निरुपम सुथरा है ॥
निज रुचि-प्रियता-ममताति का है न पता उसमें कहीं ।
धारायें उसमें राम-हित जी शुचिता सँग हैं बहीं ॥१६॥

अकपट-चित से बत अनन्यमन रोप युगल पग ।
वे करते अनुसरण राम का नीरवता सँग ॥
उसी काल यह मौन तपस्वी जीभ हिलाता ।
जब रघुपति-हित-सुयश-मान पर संकट आता ॥
जग-जनित ताप उपशमन के लिये त्याग निजता गिला ।
सौमित्र आत्मरति नीर था राम-प्रीति पथ में मिला ॥१७॥

कुंठितमति पौरुष-विहीनता परवशता से ।
वे न सिया-पति अनुगत थे स्वारथ-परता से ॥
वरन हृदय में भ्रातृभक्ति उनके थी न्यारी ।
जिसने थी मोहनी अपर भावों पर डारी ॥
उनके जीवन-हिम-गिरि-शिखर पर अमरावति से खसी ।
राका-रजनी-चाँदनी सी स्नेह-वीरता थी लसी ॥१८॥

वे वासर थे परम मनोहर दिव्य दरसते ।
जब थे भारत-मध्य लखन से बंधु विलसते ॥
आज कलह, छल, कूट-कपट घर घर है फैला ।
हृदय बंधु से बंधु का हुआ है अति मैला ॥
हे प्रभो ! बंधु सौमित्र से फिर उपजें, गृह गृह लसैं ।
शुचि-चरित सुखी परिवार फिर भारत वसुधा में बसैं ॥१९॥

उर्मिला

[षट्पद]

किसी ऊबती से न जो जी बचावें ।
न दुख और का देख जो ऊब जावें ॥
कढ़ी आहें बेचैन जिनको बनावें ।
जिन्हें प्यार की है परख वे बतावें ॥
किसी दिन भी दो बूंद आँसू गिरा कर ।
हमारी पड़ी आँख है उर्मिला पर ॥ १ ॥

उसी उर्मिला पर न जिसने जताया ।
किसी को दरद औ न दुखड़ा सुनाया ॥
तड़पता कलेजा न जिसने दिखाया ।
न कोसा किसी को न मुखड़ा बनाया ॥
बिरह-बेलि जिसने हृदय बीच बाँई ।
जली रात दिन फूट कर जो न रोई ॥ २ ॥

जिसे प्यार कर, थी न फूले समाती ।
न जिसका बदन देख कर थी अघाती ॥
न जिसके बिना थी कभी चैन पाती ।
मधुर बात जिसकी बहुत थी लुभाती ॥
रही पद-सलिल प्रात ही जिसका पीती ।
रही देख जिसकी कंनक-कान्ति जीती ॥ ३ ॥

पञ्च-प्रमोद

उसीने किया आह उससे किनारा ।
न आई दया औ न दुख को बिचारा ॥
न एक बार उसके बदन को निहारा ।
न देखी दृगों से गिरी बारि-धारा ॥
न दस पाँच दिन या बरस दो बरस का ।
चला वह गया वनमें चौदह बरस को ॥ ४ ॥

सिसकती रही वह पड़ी एक कोने ।
सुना सब, निकल किन्तु आई न रोने ॥
कलेजे में दुखके पड़े बीज बोने ।
उसे सब सुखों से पड़े हाथ धोने ॥
न तब भी विकल प्राण-पति को बनाया ।
न मुखड़ा हुआ आँसुओं में दिखाया ॥ ५ ॥

जनक-नन्दिनी राम के पास आई ।
किसी से तनिक भी न सहमी लजाई ॥
विलख कर बिरह वेदनायें सुनाई ।
दृगों में भरी बारि बूंदें दिखाई ॥
अवध कँप उठा मर्म वेधी बिरह से ।
हिली तक नहीं उर्मिला निज जगह से ॥ ६ ॥

जनक के सदन में पली उर्मिला थी ।
सिया की सखी उच्च-कुल कन्यका थी ॥
इसी से कहूँगा न वह निष्ठुरा थी ।
वरन प्रेम रँग में रँगी प्रेमिका थी ॥
तनिक भी नहीं जो जगह से हिली वह ।
बड़ी ही समझ बूझ की बात थी यह ॥ ७ ॥

उर्मिला

रहे राम स्वाधीन जेठे सहोदर ।
उन्हें था न संकोच सकते थे सब कर ॥
सुमित्रा सुवन थे पराधीन सहचर ।
विविध राम-सेवादि में रत निरन्तर ॥
इसीसे न वह साथ सकते थे ले जा ।
सुमुखि उर्मिला को कठिन कर कलेजा ॥ ५ ॥

उसे ले, अगर साथ सौमित्र जाते ।
बड़े काम तो एक भी कर न पाते ॥
कहाँ तक लजाते ठिठाई दिखाते ।
बड़ों की बड़ाई कहाँ तक निभाते ॥
असुविधा सभी बात में मुख दिखाती ।
वँधी मेंड़ मरजाद की टूट जाती ॥ ६ ॥

समझती रही उर्मिला बात सारी ।
रही पति-हृदय से उसे जानकारी ॥
नहीं मानती थी उसे वह सुनारी ।
जिसे—कंत-अनुगामिता हो न प्यारी ॥
इसी से नहीं निज जगह से टली वह ।
जहाँ थी वहीं दब बिरह में जली वह ॥ १० ॥

नहीं नारि जो पति हृदय जान पाती ।
नहीं आप ही जो उचित कर दिखाती ॥
कठिन काल में जो नहीं काम आती ।
नहीं जो कि पति-हेतु निजता गँवाती ॥
न कोई सकेगा उसे कुल-बधू कह ।
न है प्यार के पंथ की पंथिनी वह ॥ ११ ॥

पद्य-श्रमोद

भरी बात में हो बड़ी ही मिठाई ।
लगी किन्तु होवे कलेजे में काई ॥
तनिक स्वार्थ बू प्यार में हो समाई ।
दुई की भलक हो दृगों रंग लाई ॥
भला है न तो ब्याह-मंडप में आना ।
भरे लोग में नेह-गाँठें गठाना ॥ १२ ॥

रही उर्मिला कुल-बधू आर्य्य-बाला ।
मिला था उसे उर बड़ा प्यार वाला ॥
इसी से बहुत जी को उसने सम्हाला ।
पकड़ कर कलेजा सहा सब कसाला ॥
बड़े लाड़ औ प्यार के साथ पोसी ।
जली औ घुली मोम की बत्तियों सी ॥ १३ ॥

न तब भी किसीने गले आ लगाया ।
न पोंछा सलिल जो दृगों ने बहाया ॥
न कर तक उसे बोधने को बढ़ाया ।
दिखाई पड़ी तक किसी की न छाया ॥
न सोचा किसी ने कभी आँख भर कर ।
गई बीत क्या इस सरल बालिका पर ॥ १४ ॥

बड़ों को सभी आँख है देख पाती ।
दुखी दीन की है किसे याद आती ॥
नहीं दुंद जो रो कल्प कर मचाती ।
नहीं पीर अपनी किसी को जनाती ॥
सदा ही यही ढंग जग का दिखाया ।
उदधि नाद में कब नदी रव सुनाया ॥ १५ ॥

सच्चा प्रेम

[ललित पद]

अमरलोक से आ उतरी सी एक अलौकिक बाला ।

क्षितितल पर निज छवि छिटकाती करती रूप उँजाला ॥
कलित किनारी बलित परम कमनीय वसन तन पहने ।

विलसित हैं जिसके अंगों पर रत्न-खचित बर गहने ॥१॥

रखे कमल-सम दाँयें कर पर लोटा सजल निराला ।

लिये वाम-कर में कुसुमों की थाली अनुपम आला ॥
जैसे ही निज कान्त सदन से पुलकित बाहर आई ।

वैसे ही एक मूर्ति अलौकिक सम्मुख पड़ी दिखाई ॥२॥

था उसका अभिराम श्याम तन कोटि-काम-मद-हारी ।

जिस पर नव विभूति विलसित थी भव-विभूति से न्यारी ॥
शिर पर मंजुल जटा-छटा थी तन पर था मृग-छाला ।

कंबु मनोरम मृदुल गले में थी विराजती माला ॥३॥

सकमंडल कर में लकुटी थी कानों में मुद्रायें ।

अंकित थीं सुविशाल भाल पर रुचिर तीन रेखायें ॥
विकच-नील-अरविन्द-विनिन्दक थी मुख-इन्दु-निकाई ।

युगल भौंह ने जिस पर उपमा अलि-अवलि की पाई ॥ ॥

अनुरंजित अनुराग-लाग में डूबे सहज फव्वीले ।

रतनारे, न्यारे, कजरारे, थे युग नयन रसीले ॥
ललित अधर पर विलस रही थी हँसी सरस अभिरामा ।

अंग अंग थी सुखवि छलकती देख ललकती बामा ॥५॥

पद्य-प्रमोद

तिरछी आँखों से विलोक कर यह मूरत मन-हारी ।

चकित हुई मृग-शावक-लोचनि विकच बनी उर क्यारी ॥

उठे न पाँव, पधार सकी नहीं पड़ी प्यार के पाले ।

श्याम स्वरूप अनूप रूपने औचक फंदे डाले ॥६॥

चकित, थकित, पुलकित, नवला को देख श्याम-वपु बोले ।

अपनी रुचिर वचन-रचना में सरस सुधा रस घोले ॥

ऐ विधि की कल कीर्त्ति-लता की कुसुमावलि में आला ।

जग-ललामता कोमलता की कान्ति-विधायिनि बाला ॥७॥

मानव-रत्न कौन है वह, तू है जिसके रँग-राती ।

जिसके हित पूजने उमा-पति प्रति वासर है जानी ॥

होगा बड़ा भाग-वाला वह, मैं हूँ महा अभागा ।

विधि-वश सुर-दुर्लभ विभूति से जो मम मन अनुरागा ॥८॥

देख सामने खिली मालती मैं हूँ बल बल जाता ।

पर उसके सँग जी बहलाने पल भर भी नहीं पाता ॥

मैं हूँ वह प्यासा, समीप जिसके है रस का प्याला ।

किन्तु उसे छू सकने तक का पड़ा हुआ है लाला ॥९॥

उमड़ घुमड़ है घन सनेह का दया-वारि बरसाता ।

पर निज चातक को दो बूँदें देते है अकुलाता ॥

पारावार अपार रूप का लहराता है आगे ।

पर अनुकूल लहर पा करके भाग न मेरे जागे ॥१०॥

कल मलयानिल अति समीप से बहुधा है बह जाता ।

किन्तु कभी भी मम ही तल को शीतल नहीं बनाता ॥

यह प्रपंच अत्रलोक जगतका मेरा जी अकुलाया ।

योगी बन मैं बन बन घूमा अंग भभूत रमाया ॥११॥

सच्चा प्रेम

किन्तु चित्त ने चन न पाया मन भी हाथ न आया ।

टली न आधि, समाधि लगी नहिं, मिटी न ममता माया ॥

आसन मार रोक मन को जब मैं हूँ ध्यान लगाता ।

तब उसका ही रम्य-रूप मम उर में है खिल जाता ॥१२॥

कोमल किसलय, कल कुसुमावलि, मंजुल वंजुल कुंजें ।

पारावत केकी-पिक-संकुल-मुखारित विपुल-निकुंजें ॥

उस ललामता खनि की मुक्तको प्रति-पल याद दिला के ।

परमाकुल करती हैं कितनी ललित कला दिखला के ॥१३॥

रजनि सुन्दरी जब नखतावलि मुक्तमाल है पाती ।

जब चाँदनि मिस मृदु मुसकाती, है विधुवदन दिखाती ॥

तब मैं पुलकित क्या होऊँगा अति विचलित हूँ होता ।

बड़े वेग से बह जाता है उर में बहु दुख-सोना ॥१४॥

सरस पवन जब सन मन चलकर है सुर मधुर सुनाती ।

तब हो सुरति विभूषण-ध्वनि की भर आती है छाती ॥

प्रातःकाल मृदुल रवि कर जब हैं कमलनि को छूते ।

तब होता हूँ विपुल विकल आँमू चम्व से हैं चूने ॥१५॥

किसी काल में जैसे तन को नहीं छोड़ती छाया ।

निकल नहीं सकता वैसे ही उर में रूप समाया ॥

सुर-दुर्लभ विभूति को मुक्त सा पामर जन नहिं पाता ।

दिवि-ललाम-भूता ललना से क्या है कपि का नाता ॥१६॥

चरम शान्ति की मूर्ति सुशीले तू बतला इतना ही ।

कैसे शान्ति मिलेगी मुक्त को क्यों होगी चित-चाही ॥

तू है सरल, शिरोमणि तू है प्रेम-पंथ-पथिका की ।

इसीलिये हूँ दवा पूछता तुम से हृदय-विथा की ॥१७॥

पद्य-प्रमोद

निज-कर-कमल राजते जल लौं तू उर तरल बनावे ।

फिर उसकी सनेह-धारा सां सारा ताप नसावे ॥

कर की सुमनवती थाली लौं सुमनवती बन बाले !

मुझ ऊबे, वियोग वारिध में डूबे को अपना ले ॥१८॥

जैसे मान सके मेरा मन वैसे इसे मना दे ।

अधिक क्या कहूँ मेरी बिगड़ी जैसे बने बना दे ॥

इतना कह कर मौन हुआ वह प्रेम-पंथ-मतवाला ।

ललना के तन-मन-नयनों पर जादू डाल निराला ॥१९॥

मुदित दिशायें हुईं, मंजु लतिकायें मृदु मृदु डोलीं ।

खिले प्रसून, बेलियाँ बिकसीं, चिड़ियाँ स्वर से बोलीं ॥

इसी काल का चित्र मनोहर यह सामने विलोको ।

उसमें चित्रकार कर-कमलों का कौशल अवलोको ॥२०॥

प्रेमिक की सुन प्यारी बातें प्रेम रंग में डूबी ।

पहले हुई अतिचकित बाला फिर चंचल हो उठी ॥

जिसकी प्रीति-लाभ हित प्रतिदिन था पुरारि को पूजा ।

जिसके तुल्य आँख में उसकी था न अवनि में दूजा ॥२१॥

उसको निज अनुरक्त देख यों देह-दशा वह भूली ।

प्रेम-उमंग-रंग-रञ्जित हो ललित लता लौं फूली ॥

फिर प्रतिपल अति पुलकित होती छवि विलोकती बाँकी ।

उसने उसी सलिल-सुकुसुम से प्रियतम की पूजा की ॥२२॥

जो दो उर थे संगम-कामुक पड़े प्रेम के पाले ।

वे यों आज मिले दिखला कर अपने ढङ्ग निराले ॥

जिस पर जिसका सत्य प्रेम भूतल में है हो जाता ।

है सन्देह न कुछ भी इसमें वह उसको है पाता ॥२३॥

संयुक्ता

[छप्पै]

आर्यवंश की विमल कीर्ति की ध्वजा उड़ाती ।
क्षत्रिय-कुल-ललना-प्रताप-पौरुष दिखलाती ॥
कायरउर में वीर भाव का बीज उगाती ।
निबल नसों में नवल रुधिर की धार बहाती ॥
विपुल वाहिनी को लिये अतुल वीरता में भरी ।
सबल बाजि पर जा रही है संयुक्ता सुन्दरी ॥ १ ॥

प्रबल नवल-उत्साह-अङ्क में शक्ति बसी है ?
या साहस की गोद मध्य धीरता लसी हैं ?
परम ओज के संग विलसती तत्परता है ।
या पौरुष के सहित राजती पीवरता है ॥
चपल तुरग की पीठ पर चाव-चढ़ी चित-मोहती ।
या दिलीश उत्संग में है संयुक्ता सोहती ॥ २ ॥

शिशु-स्नेह

[छापे]

सहज सुन्दरी अति सुकुमारी भोली भाली ।
गोरे मुखड़े, बड़ी बड़ी कल आँखों वाली ॥
खिले कमल पर लसे सेवारों से मन भाये ।
खुले केश, जिसके सुकपोलों पर हैं छाये ॥
बहु-पुलक-भरी मन-मोहिनी कुछ भौंहें बाँकी किये ।
यह सरल बालिका कौन है अङ्क नवल बालक लिये ॥ १

खिली कमलिनी-अङ्क गुलाब कुसुम विकसा है ।
या भोलापन परम सरलता-संग लसा है ॥
या विधि न्यारे करके कलित खिलौने ये हैं ।
जो जन की युग आँखों पर करते टोने हैं ॥
या जीवन-तरु-रस-मूल के ये फल हैं प्यारे परम ।
या प्रकृति-कोप कमनीय के ये हैं रत्न मनोज्ञतम ॥ २

अपना विकसित बदन बड़े चावों से रख कर ।
खिले फूल से शिशु के सुन्दर मुखड़े ऊपर ॥
कौन अनूठा भाव बालिका है बतलाती ।
कौन अनोखा दृश्य दृगों को है दिखलाती ॥
क्या सूचित करती है उन्हें, हैं भावुक जो भूमि पर ।
ये युगल कलाधर है मिले उर कुमोद उत्फुल्ल कर ॥ ३

शिशु-स्नेह

युग शिशु-उर में प्यार-बीज अंकुरित नहीं है ।
क्यों होता है विकच बदन यह विदित नहीं है ॥
किसी काल जब मिल जाते हैं दो प्यारे जन ।
क्यों होता है मोद, विकस जाता है क्यों मन ।
इस गूढ़ बात का मरम भी यदपि नहीं कुछ जानते ।
हैं तदपि मुदित वे, हैं मनो मोद-सिंधु अवगाहते ॥ ४ ॥

रविकर कोमल परस, कमल-कुल खिल जाता है ।
पाकर ऋतु पति पवन रंग पादप लाता है ।
क्या उनका है प्यार, मोद वे क्यों हैं पाते ।
किस स्वाभाविक सूत्र से बँधे वे किस नाते ।
यह सकल श्रीमती प्रकृति को परम अलौकिक है कला ।
है बहु अंशों में प्राणि-उर एक रंग ही में ढला ॥ ५ ॥

क्यों विकसित मुख देव्य, चित्त है विकसित होता ।
उर में क्यों उर सरस बहाता है रस-सोता ॥
क्यों बीणा बजकर है सरव सितार बनाती ।
क्यों मृदंग-ध्वनि है पनवों में ध्वनि उपजाती ॥
इसमें नहिं अपर रहस्य है सकल हृदय है एक ही ।
स्वर जैसे वीन सितार, औ पनव मृदंग जुदा नहीं ॥ ६ ॥

हैं दोनों शिशु हृदयवान नेही हैं दोनों ।
रत्न मनोहर एक खानि के ही हैं दोनों ॥
फिर क्यों उनका परम प्रेममय उर नहिं होगा ।
देख एक को मुदित, अपर क्यों मुदित न होगा ॥
नव कला कुमुदिनी-कान्त की जो विकास पाती नहीं ।
तो क्या स्वाभाविक मंजुता उसमें सरसाती नहीं ॥ ७ ॥

पद्य-प्रमोद

इन शिशुओंकी प्रीति परम आनंद-पगी है ।
अति विमला है लोकोत्तरता रंग-रंगी है ॥
भावमयी, रसमयी, रुचिर उच्छ्वासमयी है ।
दृग-विमोहिनी चित्तरंजिनी नित्य नयी है ॥
यह लोक-विकासिनि शक्ति के, कमल करों से है छुई ।
यह वह अति प्यारी वस्तु है, स्वर्ग-सुखा जिसमें चुई ॥ ८ ॥

इस सनेह में नहीं स्वार्थ की वू आती है ।
कपट, बनावट नहीं प्रवेश इसमें पाती है ॥
छाँटे इस पर पड़ी नहीं छल बल की होतीं ।
चित-मलीनता नहीं इसकी निर्मलता खोती ॥
यह वह प्रमोद बन है, नहीं अनवन वायु जहाँ बही ।
यह वह प्रसून है, उपजता कलह-कीट जिसमें नहीं ॥ ९ ॥

क्यों कोमल किसलय है जी को बहुत लुभाते ।
क्यों पशु के बच्चे तक हैं चित को विलसाते ॥
बाल-भाव है परम रम्य है बहु मुददाता ।
आँखों-भर उसको लख कर है जग सुख पाता ॥
मानव कुल के ये शिशु-युगल अति सुन्दर प्यारों-पगे ।
मन, नयन विमोहेंगे न क्यों, सहज भाव सच्चे सगे ॥ १० ॥

वामन और बलि

[छ पै]

वामन हैं विभु प्रकृति नियम के नियमनकारी ।
भव विभुता आधार भुवन प्रभुता अधिकारी ॥
व्यापक विविध विधान विश्वके सर्वाधि विधायक ।
लोकनीति परलोक प्रथा के प्रगति प्रदायक ॥
जग अभिनय अति कमनीय के वर अभिनेता मोद हृद ।
अवतार रूप में अवनि के भार निवारक मुक्तिप्रद ॥ १ ॥

बलि है बहु बलवान लोक विजयी दनुजाधिप ।
धीर वीर साहसी विबुध सेवित वसुधाधिप ॥
हो उदार अनुदार नीति अवलम्बन कारी ।
कुछ उद्धत अधिकार प्रेम प्रेमिक अविचारी ॥
मानव मानवता दमनरत सुरसमूह दृग प्रबलतम ।
मङ्गलमय, मङ्गल कामना कमनीयता कलंक सम ॥ २ ॥

यह सारा संसार वाग है परम मनोहर ।
दनुज मनुज सुरवृन्द आदि हैं सुन्दर तरुवर ॥
ललित कलित वर वेलिलोक की ललनायें है ।
बालक हैं कल कुसुम बालिका लतिकायें हैं ॥
स्वर्ग ही हैं कलरव निरत स्वर्ग पालित पशु हैं पशु सकल ।
तृण वीरुध बहुविध जीव हैं विधि विधान हैं विविध फल ॥ ३ ॥

प्रथ-प्रमोद

परि पालक यदि सहुचि बाग परिपालन रत हो ।
सानुकूल रह सहज समुन्नति निरत सतत हो ॥
करे सकल मल दूर म्लानता उसकी खोवे ।
वर अवसर अवलोक .बीज हित साधन बोवे ॥
कर काट छाँट समुचित उसे करे सदा कंटक रहित ।
तो होगी कृति कमनीयता मिलित परम प्रभु रुचि सहित ॥४॥

किन्तु यदि न वह दया वारि से उसको सींचे ।
कृमि संकुल विदलित बिलोक नयनों को मींचे ॥
अथवा पादप पुंज समुन्मूलन रत होवे ।
लता वेलि कोदले कुसुम चय उपचय खोवे ॥
तो किसी जगतहित साधिका दिव्य शक्ति से विवश बन ।
निज निपतन गति अनुसार ही होवेगा उसका पतन ॥५॥

दिव्य शक्ति की दिव्य मूर्ति हैं वामन विभु वर ।
परिपालक है पतन प्राय बलि बैरी सुर नर ॥
वह उदार है, परम मलिन है नीति न उसकी ।
परि पालन की विपुल बुरी है रीति न उसकी ॥
वह परम भक्त प्रह्लाद का है अति प्यारा वंश धर ।
इस से निग्रह की क्रिया में है न अंगुग्रह की कसर ॥६॥

छल प्रपंच जिसके जीवन का संबल होवे ।
क्यों सँभले सर्वस्व जो न वह छल से खोवे ॥
जो सबको लघुगिने, साम्य क्यों करे प्रचारित ।
जो न आवरित करे उसे लघुता विस्तारित ॥
जग जैसे को तैसा मिला तुच्छ नहीं है अग्नि कण ।
वामन वामनता विशदता का यह है विशदीकरण ॥७॥

वामन और बलि

रुचिर नीति है यही रुधिर का पात न होवे ।
जहाँ शान्ति रह सके वहाँ उत्पात न होवे ॥
भौंह तने जो भीत बने असि उसे न मारे ।
लघु अपराधी उदर करद द्वार न बिदारे ॥
है क्रिया नीति की सहचरी जननी शान्ति महान की ।
वामन के दान ग्रहण तथा बलि के दान प्रदान की ॥८॥

लोक हितकारी क्रिया सके अवलोक नहीं सित ।
इसीलिये लोचन विहीन हो बने कलंकित ॥
प्रतिपालन कर वचन नपाया बलि ने निजतन ।
वामन ने प्रतिपल जन किया द्वार पालवन ॥
यह देख युगल यश जलज का सकल लोकमन अलि हुआ ।
बलि पर वामन बलि हो गये वामन पर बलि बलि हुआ ॥९॥

जगजन रंजन रुचिर नीति से हो बहु वंचित ।
कर त्रिभुवन भी दान हुआ बलि परम प्रवंचित ॥
हो त्रिलोक पति धीर वीर विजयी उदार चित ।
अधः पतित वह हुआ हुए पाताल प्रवासित ॥
वर्धन कर त्रिभुवन शान्ति मुख समधिक संवर्धित हुए ।
हो दामन बँध विधि सूत्र में वामन बहु वर्धित हुए ॥१०॥

— — —

कमल

[छापै]

ऊपर नभ नीलाभ रक्त रविबिम्ब विराजित ।
ककुभ परम रमणीय रागद्वारा आरंजित ॥
नीचे पुलकित हरित लता तरु पूरित भूतल ।
नवश्यामल तृणराजि बड़े कमनीय फूल फल ।
बहु विकच सरोरुह से लसित कान्त केलि खगकुल बलित ।
कलकल कलकल रव मुखरिता सरिकलिन्द तनया कलित ॥॥

रविजा में हैं सोह रहे सोपान मनोहर ।
उन पर हैं लसरही युगल ललना अति सुन्दर ॥
हैं तनके वरवसन विभूषण बड़े निराले ।
हैं सिर पर जल कलश नयन हैं रस के प्याले ॥
सामने जलद तन हैं खड़े कर आकुल लोचन सफल ।
निज कमलोपम कर में लिये दो कमनीय विकच कमल ॥२॥

उनका सुमधुर कंठ मधुरिमामय कर मानस ।
वरस रहा है पूत प्रकृति पर परम रुचिर रस ॥
सानुराग कर ललित राग रंजित नभतल को ।
सरस सरस अति सरस कर रहा है सरिजल को ॥
वह गोपबाल को धेनु को बिहगवृन्द को कर सुखित ।
कलकूल बिलसिती बाल को बना रहा है बहु मुदित ॥३॥

कमल

उसकी ध्वनि है मधुर मुरलिका सी मनहारी ।
 पिक काकली समान विपुलचित्त पुलकितकारी ॥
 सकल अलौकिक भूति निकेतन उसका मृदुस्वर ।
 बरसता है सुधा सुधानिधि लौ वसुधा पर ॥
 उसमें सुभाषनाओं सहित वह रसालता है भरी ।
 जिसने कि पिपासा ज्ञान की जगत पिपासित की हरी ॥४॥

कहते हैं ब्रजदेव दिखा करके कमलों को ।
 देवि इन विकच कुसुमों की गरिमा अवलोको ॥
 इन जैसा अनुराग रंग में कौन रंगा है ।
 कौन भला यों मित्र मित्रता मध्य पगा है ॥
 मानस मोहकता मधुरता भावों की रमणीयता ।
 किसमें है ऐसी विकचता कोमलता कमनीयता ॥५॥

हैं विरंचि से सुवन बंधु है विदित विभाकर ।
 है उसका अवलंब जगत पाता पावन कर ॥
 रमा मन रमे सदा रमी उसमें रहती है ।
 शिव शिर पर चढ़ मिली उसे महिमा महती है ॥
 मदमत्त हुआ तो भी न वह सदा प्रेम पाता रहा ।
 मधुकर समान मधुश्रंध भी उससे मधु पाता रहा ॥६॥

सर उससे है परम कान्त बन शोभा पाता ।
 पाकर सुरभि समीर सौरभित है हो जाता ॥
 रस लोलुप को परम मधुर रस है वह देता ।
 दृग को कर सुखदान बहु सुखित है कर लेता ॥
 वह परहित रत रहकर सदा किसका हित करता नहीं ।
 बर विकसित रहकर कौनसा चित विकसित करता नहीं ॥७॥

पद्य-प्रमोद

आरंजित रविबिम्ब गगन सर रक्त कमल है ।
इसीलिये अनुराग रागरंजित जल थल है ॥
उसकी कोमल कान्ति कान्त भू को है करती ।
तरु को वृण को फलदल को है सुखवि वितरती ॥
वह अपनी अनुपम ज्योति से जगत तिमिर है खो रहा ।
रजकण भी नव आलोक पा आलोकित है हो रहा ॥ ८ ॥

कहें न मुख को कमल यदि न मुख विकच बनावे ।
कहें न दृग को कमल यदि न रस वह बरसावे ॥
कहें न कर को कमल जो न वह हितकर होवे ।
कहें न पग को कमल जो न अपना मल खोवे ॥
यदि तज न अकोमलता बुरी समुचित कोमलता लहे ।
तो किसी गात को कमल सा कोमल कोई क्यों बहे ॥ ९ ॥

है ललामता लोक प्रीति की परम निराली ।
लाली उसकी सकी जगत मुख की रख लाली ॥
वह ललना है बड़ी भली वह लाल भला है ।
जिसने सीखी लोक बंधुता ललित कला है ॥
क्या रहा सलिल जैसा तरल कोई मानस बन विमल ।
जो उसमें खिला मिला नहीं लोक प्रेम मंजुल कमल ॥ १० ॥



पर्णकुटी

[अश्लि]

ऊँचे श्यामल सघन एक पादप तले ।

है यह एक कुटीर सित सुमन सज्जिता ॥

इधर उधर हैं फूल बेलियों में खिले ।

वह है महि श्यामायमान छवि मज्जिता ॥ १ ॥

पास खड़े हैं कादाकार पादप कई ।

परम शान्त है प्रकृति निपट नीरव दिशा ॥

व्यापी सी सब ओर कालिमा है नई ।

धीरे धीरे आगत प्राया है निशा ॥ २ ॥

या नभ मण्डल जलद जाल से है घिरा ।

छिति तल पर है उसकी छाया पड़ रही ॥

प्रात तिमिर है तरल हो गया तिरमिरा ।

या है नभ तल विमल नीलिमा झड़ रही ॥ ३ ॥

हैं न कहीं खग मृग मानव दिखला रहे ।

मानों अविचल वहाँ विजनता राज है ॥

हैं अभाव धारा में ही कृमि कुल बहे ।

रव सिर पर भी परम मौनता ताज है ॥ ४ ॥

यह किस की है कुटी कहें कैसे इसे ।

किसी व्यथित चित का क्या यह आवास है ॥

या यह उस जन की सहेलिका है जिसे ।

निर्जन में एकान्तबास की प्यास है ॥ ५ ॥

पद्य-प्रमाद

परम पापमय इस पापी संसार से ।

समधिक आकुल जिसका मानस हो गया ॥

बहुत गया जो ऊब अवास्तव प्यार से ।

जिसका प्यारा शक्ति-रत्न है खो गया ॥ ६ ॥

जो अवलोकन कर पाता वह मुख नहीं ।

लगी अधमता की है जिस पर कालिमा ॥

या हिंसकता धारये जिस पर वहीं ।

या जिसकी है लहू रंजिता लालिमा ॥ ७ ॥

गिरा अति दुखित चित जिसका दुख कूप में ।

उस दानव की देव नीतियाँ दानवी ॥

अवनी तल पर जिसको मानव रूप में ।

उपजाती है परम पुनीता मानवी ॥ ८ ॥

उतर आँख में जिसकी आता है लहू ।

उस पामर की पामरताओं को लखे ॥

सब बातों में जो दानव है हूबहू ।

किन्तु वेश बानक वृन्दारक का रखे ॥ ९ ॥

नर पिशाचता अहमहमिकता अधमता ।

अवलोकन कर जिसका जी उकता गया ॥

जग मदांधता मायिकता बहु असमता ।

देख कलेजा मुँहको जिसका आ गया ॥ १० ॥

बिजन बिराजित ऐसी किसी कुटी सिवा ।

कौन दूसरी शान्ति विधायिनि है उसे ॥

मिली कहाँ वह अति पावन प्यारी हवा ।

हों न अपावन रुचि रज कण जिसमें बसे ॥ ११ ॥

पर्ण कुटी

भारत के बहु विबुध वृन्द सहवास से ।

यह है वसुधा विविध पुनीत प्रशंसिता ।

पा अनुपम आलोक उन्हीं के पास से ।

इसने की है सकल अवनि आलोकिता ॥१२॥

है प्रभाविता यह बहु तपो प्रभाव से ।

गिरि तनयाने इसे विपुल गौरव दिया ॥

जन रंजन मुनिजन ने पूजित भाव से ।

इस का बहु अभिनन्दन अनुरंजन किया ॥१३॥

केकय तनया प्रबल प्रपंचों में पड़े ।

कुसुम सेज जब ग्युकुल रंजन की छिनी ॥

वन में उन पर जब दुख पड़े बड़े कड़े ।

तब कुटीर ही रही विराम विधायिनी ॥१४॥

देश-प्रेम औ जाति-प्रेम प्रेमिक बने ।

विविध यातना जब नृप पुङ्गव ने सही ॥

जब प्रताप से प्रिय परिजन तक थे तन ।

तब कुटीर ही उनका अवलम्बन रही ॥१५॥

निकल आह इसमें से ही प्रलयंकरी ।

सौध धवल धामों को देती है जला ॥

लोकलयकरी ज्वाला है इसमें भरी ।

इसमें ही दनु वंश दहन रत दब बला ॥१६॥

समधिक तेजोमयी महान विनोदिनी ।

सहज सुखों की सखी सरलताओं भरी ॥

बहु मानव हितकरी ताप अवनोदिनी ।

कुटी शान्ति की है अति प्यारी सहचरी ॥१७॥

रवि सहचरी

[चौपदे]

चन्द्र बदनी तारकावलि शोभिता ।
रंजिता जिसको बनाती है दिशा ॥
दिव्य करती है जिसे दीपावली ।
है कहाँ वह कौमुदी वसना निशा ॥ १ ॥

क्या हुई तू लाल उसका कर लहू ।
क्या उसीके रक्त से है सिक्त तन ॥
दीन हीन मलीन कितनों को बना ।
क्यों हुआ तेरा ऊपा उत्फुल्ल मन ॥ २ ॥

वह बुरी काली कलूटी क्यों न हो ।
क्यों न वह होवे भयंकरता भरी ॥
पर कलानिधि का वही सर्वस्व है ।
है वही कल कौमुदी की सहचरी ॥ ३ ॥

मणि जटित करती गगन को है वही ।
उड़ु बिलसते हैं उसी में हो उदित ॥
है चकोरों को पिलाती वह सुधा ।
है वही करती कुमुद कुल को मुदित । ४ ॥

है बिलसती तू घड़ी या दो घड़ी ।
किन्तु वह सोलह घड़ी है सोहती ।
है अगर मन मोहना आता तुझे ।
तो रजनि है कम नहीं मन मोहती ॥ ५ ॥

रवि सहचरी

तू लसे पाकर परम कमनीयता ।
लाभ कर बर ज्योति जाये जगमगा ।
बंद आँखें खोल आलस दूर कर ।
दे जगत के प्राणियों को तू जगा ॥ ६ ॥

है उचित यह, है इसे चित मानता ।
किन्तु है यह बात जी को खल रही ॥
देख करके दूसरे का वर विभव ।
किसलिये तू इस तरह है जल रही ॥ ७ ॥

लाल है तो तू भले ही लाल बन ।
पर कभी मत क्रोध से तू लाल बन ॥
क्यों न मालामाल ही हो जाय तू ।
पर किसी का मत कभी तू काल बन । ८ ॥

उस समुन्नति को भली कैसे कहें ।
और को जो धूल में देवे मिला ॥
दूसरा जो फूल फल पाया न तो ।
किसलिये मुखड़ा कभी कोई खिला ॥ ९ ॥

देख कर तुझको परम अनुरंजिता ।
था बिचारा प्यार से तू है भरी ॥
विधु विधायकता तुझे कैसे मिले ।
जब प्रखर रवि की बनी तू सहचरी ॥ १० ॥



एक चिरपथिक

[ललित पद]

प्रिय आवास वास सुख वंचित बहु प्रवास दुख से ऊबा ।
नव उमंगमय एक चिरपथिक अभिनव भावों में डूबा ॥
विकच वदन अति मंद मंद सानंद सदन दिशि जाता था ।
विविध तरंग तरंगित मानस रंगत रुचिर दिखाता था ॥ १ ॥

प्रिया प्रतीची अंकरंजिनी दिन रंजन किरणें रंजित ।
उसजा मन रंजन करती थीं मंजुराग कर कर व्यंजित ॥
गगन लालिमा मुखलाली को समधिक ललित बनाती थी ।
खिलखिल कलिका कलित कुसुमकी दिलकी कली खिलाती थी ॥ २ ॥

कानों को कलोलरत खग कुलकलरव सुधा पिलाता था ।
गंध बाह बरगंध बहन कर बहु विनोद उपजाता था ॥
रजनी-मुख विकसित कुमोदिनी मिस मृदु मृदु मुसकाती थी ।
करा किसी विधु वदनी की सुधि निज विधु वदन दिखाती थी ॥ ३ ॥

विभावरी ने जब तारक चय खचित रुचिर सारी पहनी ।
उसी समय अवलोकी उसने सदन पास की प्रिय अवनी ॥
सौध धवल प्रासाद मनोहर निकट उसी के दिखलाया ।
दूर हुआ अवसाद स्वाद गृह दर्शन का उसने पाया ॥ ४ ॥

हँसा हँसाकर दिशा बधू को कान्त कौमुदी हँसती थी ।
विमल गगन भूतल पाद पदल फल पर विपुल विलसती थी ॥
गृह उद्यान ज्योति से उसकी ज्योतिर्मय दिखलाता था ।
वर प्रासाद जगमगा करके हीरक जटित जनाता था ॥ ५ ॥

एक चिर पथिक

किन्तु देख नीरवता बाँकी चिन्तित पुलकित-पथिक हुआ ।
निर्जनता अवलोक अनाकुल मानस आकुल अधिक हुआ ॥
इसी समय आलापिनि द्वारा हुआ मधुर आलाप वहीं ।
जिससे सरस सुधा की धारें परम सरसता साथ वहीं ॥ ६ ॥

फिर कोकिल-कल-कंठ नाद से लगा गूँजन ककुभ सकल ।
गीत कलित कोमल पदावली बनी विकल चितका संबल ॥
यह सुन पड़ा, चिर पथिक कैसे चिरपथिकाको है भूला ।
कैसे कुम्हला गया हमारा अति सुन्दर सुख तरु फूला ॥ ७ ॥

क्यों जीवन सर्वस्व न मेरा जीवन सफल बनाता है ।
परम प्रेम धन क्यों स्वप्रेमिका को पल पल कलपाता है ॥
तन में मन में युगल नयन में जिसने अयन बनाया है ।
रूप मनोरम जिसका मेरे रोम रोम रम पाया है ॥ ८ ॥

वही नहीं मिलता है मेरा दिल मल मल रह जाता है ।
दिन दिन दुख दूना होता है सूना जगत दिखाता है ॥
वन वन फिरी बिलोके उपवन किया तपोवन में फेरा ।
नगर नगर घर घर में घूमी गिरिवर पर डाला डेरा ॥ ९ ॥

तन सूखा, मन मरा, धन गया, पड़े पगों में हैं छाले ।
मिले आज तक नहीं निवारक रौरव दुख गौरव वाले ॥
मिले कुसुम उद्यान धूल में परम रम्य प्रासाद ढहे ॥
इस आनन्दमयी अवनी में निगनन्द का स्रोत बहे ॥ १० ॥

परिजन दुख पावें, जिनको जन विधि विधानवश पाता है ।
किन्तु हमें आलोक निकेतन अब परलोक दिखाता है ॥
यह स्वर लहरी गूँज गूँज जब पवन लहर में लीन हुई ।
उसी समय दो भाग मलिनता अमलिनता आधीन हुई ॥ ११ ॥

पद्य-प्रमोद

उठी यवनिका चिर वियोग की दो संयोगी गले मिले ।
बहुत दिनों के अविकच मुखड़े विकच सरोज समान खिले ॥
चमक चाँदनी उठी चमकते चन्द्रदेव भी दिखलाये ।
विपुल प्रसून, प्रफुल्लित तरु ने पुलक पुलक कर बरसाये ॥१८॥

पथिकतीर्थ प्रेमिक था पूरा पथिका पति प्रेमिका बड़ी ।
इसी लिये उनको वियोग की सहनी नाना व्यथा पड़ी ॥
किन्तु अन्त में, हुए विरह का अन्त, मिले दोनों नेमी ।
देख जगत की रीति अधिकतर बने प्रीति पथ के प्रेमी ॥१९॥

केवल गृह उद्यान सुमन ही, नहीं सुमनता दिखलाते ।
कंटक मय पथ को भी वे थे सरस सुमन मय कर पाते ॥
यदि उनका प्रासाद प्रेम प्रासाद पुकारा जाता था ।
तो उनके प्रसाद गुण द्वारा सभी प्रसादित आता था ॥२०॥

सुफलद सुतरु समान, सलिलधर तुल्य रुचिर रस संचारी ।
सुखित जनों के सुखद रहे वे दुखित जनों के दुखहारी ॥
देश जाति-हित वसुधा तल पर सुर सरि धारा सदृश बही ।
आजीवन चिरपथिक सहित चिर पथिका सत्पथ पथिक रही ॥२१॥

दिल के फफोले

[चतुष्पदी]

ग्रंथ कितने पढ़े बहुत डूबे ।
भेद जाना अनेक आपा खो ॥
संत जन की सुनी सभी बातें ।
पर न जाना गया प्रभो क्या हो ॥ १ ॥

आप में है अपार बल बूता ।
यह सदा ही हमें सुनाता है ॥
किस लिये काम वह नहीं आता ।
जब निबल को सबल सताता है ॥ २ ॥

दानवों के कठोर हाथों से ।
सैकड़ों देव-वंश-दीप बुता ॥
धूल में मिल गये मुजन कितने ।
फिर कहाँ आप की रही प्रभुता ॥ ३ ॥

शान्त बैठा निरीह पंछी भी ।
जो नहीं व्याध बान से बचता ॥
हो गई तो कठोरपन की हद ।
देख ली आप की दयामयता ॥ ४ ॥

सामने बाप औ मा के ही ।
तोड़ते देख बालकों को दम ॥
लोग लेते पकड़ कलेजा हैं ।
क्या कहें आप के हृदय को हम ॥ ५ ॥

पद्य-प्रमोद

मर मिटे अन्न के बिना कितने ।

कितने ही आध पेट खा सूतें ॥

है कहीं यों पड़ा करोड़ों मन ।

देखिये आप अपनी करतूतें ॥ ६ ॥

बात कहते असंस्थ जीवों को ।

निधि डुबोता धरा निगलती है ॥

गिरि उगल आग ध्वंस करते हैं ।

बात यह क्या कभी न खलती है ॥ ७ ॥

हैं बनाये गये कुबेर वही ।

जो पकड़ते हैं दाँत से पैसा ॥

तंग मैं हूँ उदार ~~हूँ~~ पाता ।

आप का ~~बहु~~ ~~अप~~च है कैसा ॥ ८ ॥

क्लेश पर क्लेश है दुखी पाता ।

बहु विकारों भरा मनुज मन है ॥

रोग का है सदन बना नर-तन ।

क्या यही आपका बड़प्पन है ॥ ९ ॥

जो भले और हैं बहुत सीधे ।

पूछता तक उन्हें नहीं कोई ॥

है चलाकों की बोलती तृती ।

नीति की बेलि है भली बोई ॥ १० ॥

हाथ पावों बिना रचे कितने ।

है किसी को बना दिया काना ॥

भीखते हैं बहुत बिना आँखों ।

हैं इसी को ही कहते मन्ममाना ॥ ११ ॥

दिल के फफोले

जो चमकते रतन धरा के हैं ।
हैं उन्हें करते भोर का तारा ॥
मूढ़ पाते हैं आयु लोमस की ।
आप का ढंग कितना है न्यारा ॥१२॥

प्यास जिनकी लहू से बुझती है ।
जो निगल और को अघाते हैं ॥
टूट उन पर न जो पड़ी बिजली ।
किसलिये आप प्रमु कहाते हैं ॥१३॥

बात जिनकी बड़ी अनूठी है ।
पर भरा पेट में हलाहल है ॥
जो न पीछे को मुख बना उनका ।
तो सधा आपका न बुधबल है ॥१४॥

हैं जिन्हें धुन सवार यह रहती ।
किस तरह मैं करूँ बुरा किसका ॥
जो उन्हें आपने न सींग दिया ।
तो कहूँ आप की समझ को क्या ॥१५॥

जब मनुज-रक्त से सना गारा ।
शिर लगाये गये कंगूरों पर ॥
एक दिन में गले कटे लाखों ।
तब सके आप क्यों नहीं कुछ कर ॥१६॥

जब बनी प्राण-नाशिनी गोली ।
जब बनी तोप काल की पोती ॥
तब रहे देखते बदन किसका ।
आप से है हमें कुढ़न होती ॥१७॥

पद्य-प्रमोद

देख शूली मसीह को पाते ।

देख शर व्याध से विधा हरितन ॥

भू-समाती विलोक सीता को ।

आप से फिर गया हमारा मन ॥१८॥

छीन लेते हैं आँख का तारा ।

लूटते हैं किसी का जीवन-धन ॥

हैं किसी का सुहाग ले लेते ।

है यही आप का निराला पन ॥१९॥

पीट दे या कि सर पटक देवे ।

कूट डाले न क्यों कोई छाती ॥

पर टलेगी कभी नहीं होनी ।

आप की कुछ कही नहीं जाती ॥२०॥

क्यों बनाया गया जगत ऐसा ।

हैं सुलभती न गुत्थियाँ जिसकी ॥

चाल यह दूर की बड़ी गहरी ।

आपको छोड़ और है किसकी ॥२१॥

हैं बहुत मत, अनेक भगड़े हैं ।

आप को मानते नहीं कितने ॥

हैं सभी ओर उलझने तो भी ।

हम समझते हैं आप हैं जितने ॥२२॥

दिल के फफोले

जब कहीं आपकी बिना इच्छा ।

डोलता है न एक भी पत्ता ॥

किस लिये एंच पेंच फिर इतना ।

जब कि है एक आप की सत्ता ॥२३॥

ए सभी खेल जो प्रकृति के हैं ।

आप क्या हैं ? नहीं बताते क्यों ?

जो कलें आप के करों में हैं ।

ठीक उन को नहीं चलाते क्यों ? ॥२४॥



दीन की आह

[चौतुका]

न तो हिलाती गगन न तो हरि हृदय कँपाती ।

न तो निपीड़क उर को है भय-भीत बनाती ॥

निपट-निराशा-भरी निकल चुप चाप बदन से ।

दीन-आह दुख साथ वायु में है मिल जाती ॥ १ ॥

उसकी बेधकता का परिचय पाने वाला ।

उसकी दुख-मयता को जी में लाने वाला ॥

देखा जाता नहीं, कहीं कोई होता है ।

दीन-आह में अपनी आह मिलाने वाला ॥ २ ॥

बार बार अपने उर को मथ कर अकुलाती ।

अमित-ताप-परिताप भरी होठों पर आती ॥

फिर सहती अपमान शून्य में लय होती है ।

दीन-जनों की आह नहीं कुछ भी कर पाती ॥ ३ ॥

सुनते हैं उससे है पाहन भी भय पाता ।

उससे है ईश्वर का आसन भी डिग जाता ॥

किन्तु बात यह सब कहने सुनने ही की है ।

दीन-आह का एक विफलता से है नाता ॥ ४ ॥

वीर आह के तुल्य नहीं वह लहू बहाती ।

सबल-आह के सदृश नहीं वह लोथ ढहाती ॥

आशङ्कित कर धीर-आह के सम नहीं होती ।

वह अपना ही हृदय मथन कर है रह जाती ॥ ५ ॥

दीन की आह

वैसी ही उससे होती दिन रात ठगी है ।

वही दीनता अब भी उसकी बनी सगी है ॥

कौशल है, अति गूढ़ चातुरी है, यह कहना ।

दीन-आह पर हरि स्वीकृति की छाप लगी है ॥ ६ ॥

पवि कठोर को धूल बना कर धर सकती है ।

लोक-दाहक दुसह अंगारे भर सकती है ॥

किसी दयालु-हृदय से निकली हैं ये बातें ।

आह दीन की भला नहीं क्या कर सकती है ॥ ७ ॥

सभी सताने वाले निज कर मलते होते ।

पड़ विपत्तियों में दिन रात विचलते होते ॥

जो दीनों की आह में जलन कुछ भी होती ।

ऊँचे ऊँचे महल आज तो जलते होते ॥ ८ ॥

चहल पहल है जहाँ वहाँ मातम छा जाता ।

स्वर्ग-छटा है जहाँ वहाँ रौरव उठ आता ॥

दीन आह की ध्वनि यदि हरि-कानों में जाती ।

नन्दन-वन है जहाँ आज मरु वहाँ दिखाता ॥ ९ ॥

किया लोक-हित विबुध-जनों में धर्म कमाया ।

जो उनको सब काल प्रभाव-मयी बतलाया ॥

किन्तु जान कर मर्म दीन-जन की आहों का ।

भला, कलेजा किसका है मुँह को नहिँ आया ॥ १० ॥



दुखिया के आँसू

[चतुष्पदी]

बावले से घूमते जी में मिले ।

आँख में बेचैन बनते ही रहें ॥

गिर कपोलों पर पड़े बेहाल से ।

वात दुखिया आँसूओं की क्या कहें ॥ १ ॥

हैं व्यथायें सेकड़ों इन में भरी ।

ये बड़े गम्भीर दुख में हैं सने ॥

पर इन्हें अवलोक करके दो बाता ।

हैं कलेजा धामते कितने जने ॥ २ ॥

बालकों के आँसूओं को देख कर ।

है उमड़ आता पिता-उर प्रेम मय ॥^१

कौन सी इन आँसूओं में है कसर ।

जग-जनक भी जो नहीं होता सदय ॥ ३ ॥

चन्द्र-वदनी-आँसूओं पर प्यार से ।

हैं बहुत से लोग तन मन वारते ॥

एक ये हैं, लोग जिनके वास्ते ।

हैं नहीं दो बूँद आँसू ढालते ॥ ४ ॥

क्या न कर डाला खुला जादू किया ।

आँख के आँसू कढ़े या जव बहे ॥

किन्तु ये ही कुछ हमें ऐसे मिले ।

हाथ ही में जो विफलता के रहे ॥ ५ ॥

दुखिया के आँसू

पोंछ देने के लिये धीरे इन्हें ।

है नहीं उठता दया-भय-कर कहीं ॥

इन बेचारों पर किसी हम-दर्द की ।

प्यार-वाली आँख भी पड़ती नहीं ॥ ६ ॥

क्यों उरों से ये दृगों में आ कढ़े ।

था भला, जो नाश हो जाते वहीं ॥

जो किसी का भी इन्हें अवलोक कर ।

मन न रोया जी पसीजा तक नहीं ॥ ७ ॥

भाग फूटा वे वसी लिपटी रही ।

बहु दुखों मे ही सदा नाता रहा ॥

फिर अजब क्या, इस अभागे जीव के ।

आँसुओं का जो असर जाता रहा ॥ ८ ॥

वह पड़ी जो धार दुखिया आँख से ।

क्यों न पानी ही उसे कहते रहें ॥

है नहीं जिसने जगह जी में किया ।

हम भला कैसे उसे आँसू कहें ॥ ९ ॥

है कलेजे को घुला देता कोई ।

मैल चितवन पर कोई लाता नहीं ॥

कौन दुखिया आँसुओं पर हो सदा ।

पूछ ऐसों की नहीं होती कहीं ॥ १० ॥

— — —

सबल और निबल

[चौपद]

मर मिटे, पिटगये, सहा सब कुछ ।

पर निबल की सुनी गई न कहीं ॥

है सबल के लिये बनी दुनिया ।

है निबल का यहाँ निवाह नहीं ॥ १ ॥

जान पर बीतती किसी की है ।

और कोई है जी को बहलाता ॥

एक को धूल में मिला करके ।

दूसरा है कमाल दिखलाता ॥ २ ॥

घर किसी का उजाड़ होता है ।

और बनते महल किसी के हैं ।

है किसी गेह का दिया बुझता ।

और कहीं दीये जलते घी के हैं ॥ ३ ॥

दूसरों का बिगाड़ करके रँग ।

रंग अपना सभी जमाते हैं ॥

एक के नाम को मिटा करके ।

दूसरे लोग नाम पाते हैं ॥ ४ ॥

क्या कहें बात हम अमीरों की ।

आप होंगे दुखी उसे सुन के ॥

बेकसों का गला दबा देना ।

खेल है बायें हाथ का उनके ॥ ५ ॥

सबल और निबल

क्यों न दानों बिना मरे कोई ।

क्यों न अपना सभी गँवा बैठे ॥

पर उन्हें क्या, करेंगे मनमानी ।

जब कि पुतले सितम कभी गेंठे ॥ ६ ॥

काम से काम है उन्हें रहता ।

वे भला कब हुए किसी के हैं ॥

और पिसते को पीस देना ही ।

नित्त के चोचले धनी के हैं ॥ ७ ॥

रत्न न्यारे मोल का जितना अधिक ।

राज सिंहासन मुकुट में हो लगा ॥

ठीक कहते कि उतना ही अधिक ।

वह खूनके दूसरों से है रँगा ॥ ८ ॥

चैन कितने लोग पाते ही नहीं ।

जान कितनी जो न हाथों से गई ॥

नित कलेजा सैकड़ों कुचले बिना ।

पाँव सीधे पड़ नहीं सकते कई ॥ ९ ॥

क्या कहें, जी है धड़क उठा बहुत ।

फूँक कर घर सैकड़ों फूले फले ॥

लालसायें राज या धन मान की ।

आज भी हैं रेततीं लाखों गले ॥ १० ॥

बेवसी जिन पर बरसाती है बहुत ।

आँख से आँसू बहा करके घड़ों ॥

गंद जैसे हैं लुढ़कते धूल में ।

ठोकरें खा खा गिरे सिर सैकड़ों ॥ ११ ॥

पद्य-प्रमोद

छिन गये सुख चाह मिट्टी में मिली ।

औ कलेजे ने बुरी ठेसें सहीं ॥

लोग लावों लुट गये सरबस गया ।

औ हुआ क्या ? एक की बातें रहीं ॥ १२ ॥

आप आँखें खोल करके देखिये ।

आज जितनी जातियाँ हैं सिर-धरी ॥

पेट में उनके पड़ी दिखलायेंगी ।

जातियाँ कितनी सिसिकती या मरी ॥ १३ ॥

दूसरों की पीर कब समझी गई ।

और के दुख की हुई परवाह कब ॥

बात कहते गरदन कितनी नपीं ।

भौ चढ़ा बैठा कोई वे पीर जब ॥ १४ ॥

जी सभी का मांस से ही है बना ।

है कलेजा दूसरों के पास भी ॥

कौन लुट जाता नहीं निजता गँवा ।

पर समझता यह नहीं कोई कभी ॥ १५ ॥

— — —

आँख का आँसू

[चतुष्पद]

आँख का आँसू डलकता देख कर ।

जी तड़प करके हमारा रह गया ॥

क्या गया मोती किसी का है बिखर ।

या हुआ पैदा रतन कोई नया ॥ १ ॥

ओस की वृंदें कमल से हैं कड़ी ।

या उगलती वृंद है दो मछलियाँ ।

या अनूठी गोलियाँ चोड़ी मड़ी ।

खेलती है ग्यंजनों की लड़कियाँ ॥ १ ॥

या जिगर पर जो फफोला था पड़ा ।

फूट करके वह अचानक वह गया ॥

हाय ! था अरमान जो इतना बड़ा ।

आज वह कुछ वृंद बन कर रह गया ॥ ३ ॥

पूछते हो तो कहो मैं क्या कहूँ ।

यों किसी का है निगलापन गया ॥

दर्द से मेरे कलेजे का लहू ।

देखता हूँ आज पानी बन गया ॥ ४ ॥

प्यास थी इस आँख को जिसकी बनी ।

वह नहीं इसको सका कोई पिला ॥

प्यास जिससे हो गई है सौगुनी ।

वाह ! क्या अच्छा इसे पानी मिला ॥ ४ ॥

पद्य-प्रमोद

ठीक कर लो जाँच लो धोखा न हो ।

वह समझते हैं मकर करना इसे ॥

आँख के आँसू निकल करके कहो ।

चाहते हो प्यार जतलाना किसे ॥ ६ ॥

आँख के आँसू समझ लो बात यह ।

आन पर अपनी रहो तुम मत अड़े ॥

क्यों कोई देगा तुम्हें दिल में जगह ।

जब कि दिल में से निकल तुम यों पड़े ॥ ७ ॥

हो गया कैसा निराला वह सितम ।

भेद सारा खोल क्यों तुमने दिया ॥

या किसी का हैं नहीं खाते भरम ।

आँसुओं ! तुमने कहा यह क्या किया ॥ ८ ॥

भाँकता फिरता है कोई क्यों कुँआ ।

हैं फँसे इस रोग में छोटे बड़े ॥

है इसी दिल से तो वह पैदा हुआ ।

क्यों न आँसू का असर दिल पर पड़े ॥ ९ ॥

रंग क्यों निराला इतना कर लिया ।

है नहीं अच्छा तुम्हारा ढंग यह ॥

आँसुओं ! जब छोड़ तुमने दिल दिया ।

किस लिये करते हो फिर दिल में जगह ॥ १० ॥

बात अपनी ही सुनाता है सभी ।

पर छिपाये भेद छिपता है कहीं ॥

जब किसी का दिल पसीजेगा कभी ।

आँख से आँसू कड़ेगा क्यों नहीं ॥ ११ ॥

आँख का आँसू

आँख के परदों से जो छनकर बहे ।

मैल थोड़ा भी रहा जिसमें नहीं ॥

बूँद जिसकी आँख टपकाती रहे ।

दिल जलों को ! चाहिये पानी वही ॥ १२ ॥

हम कहेंगे क्या कहेगा यह सभी ।

आँख के आँसू न ये होते अगर ॥

बावले हम हो गये होते कभी ।

सैकड़ों टुकड़े हुआ होता जिगर ॥ १३ ॥

है सगों पर रंज का इतना असर ।

जब कड़े सदमे कलेजे ने सहे ॥

सब तरह का भेद अपना भूल कर ।

आँख के आँसू लहू बनकर बहे ॥ १४ ॥

क्या सुनावेंगे भला अब भी खरी ।

रो पड़े हम पत तुम्हारी रह गई ॥

ऐंठ थी जी मे बहुत दिन से भरी ।

आज वह इन आँसुओं में वह गई ॥ १५ ॥

वात चलते चल पड़ा आँसू धमा ।

खुल पड़े वेंड़ी सुनाई रो दिया ॥

आज तक जो मैल था जी में जमा ।

इन हमारे आँसुओं ने धो दिया ॥ १६ ॥

क्या हुआ अंधेर ऐसा है कहीं ।

सब गया कुछ भी नहीं अब रह गया ॥

ढूँढ़ते हैं पर हमें मिलता नहीं ।

आँसुओं में दिल हमारा वह गया ॥ १७ ॥

पद्य-प्रमोद

देखकर मुझको सम्हल लो, मत डरो ।

फिर सकेगा हाय ! यह मुझको न मिल ॥

छीन लो, लोगों ! मदद मेरी करो ।

आँख के आँसू लिये जाते हैं दिल ॥ १८ ॥

इस गुलाबी गाल पर यों मत बहो ।

कान से भिड़कर भला क्या पा लिया ॥

कुछ घड़ी के आँसुओं मेहमान हो ।

नाक में क्यों नाक का दम कर दिया ॥ १९ ॥

नागहानी से बचा, धीरे बहो ।

है उमंगों से भरा उनका जिगर ॥

यों उमड़ कर आँसुओं सच्ची कहाँ ।

किस खुशी की आज लाये हो खबर ॥ २० ॥

क्यों न वे अब और भी रो रो मरें ।

सब तरफ़ उनको अंधेरा रह गया ॥

क्या बिचारी डूवती आँखें करें ।

तिल तो था ही आँसुओं में वह गया ॥ २१ ॥

दिल किया तुमने नहीं मेरा कहा ।

देखते हैं खो रतन सारे गये ॥

जोत आँखों में न कहने को रही ।

आँसुओं में डूब ये तारे गये ॥ २२ ॥

पास हो क्यों कान के जाते चले ।

किस लिये प्यारे कपोलों पर अड़ो ॥

क्यों तुम्हारे सामने रह कर जले ।

आँसुओं आकर कलेजे पर पड़ो ॥ २३ ॥

आँख का आसू

आँसुओं की बूँद क्यों इतनी बड़ी ।

ठीक है तकदीर तेरी फिर गई ॥

थी हमारे जी से पहले ही कड़ी ।

अब हमारी आँख से भी गिर गई ॥ २४ ॥

आँख का आँसू बनी मुँह पर गिरी ।

धूल पर आकर वही वह खो गई ॥

चाह थी जितनी कलेजे में भरी ।

देखता हूँ आज मिट्टी हो गई ॥ २५ ॥

भर गई काजल से कीचड़ में सनी ।

आँख के कोनों छिपी ठंडी हुई ॥

आँसुओं की बूँद की क्या गत बनी ।

वह वर्गों से भी देखो छिद गई ॥ २६ ॥

दिल से निकले अब कपोलों पर चढ़ो ।

बात बिगड़ी क्या भला बन जायगी ॥

ऐ हमारे आँसुओं ! आगे बढ़ो ।

आपकी गरमी न यह रह जायगी ॥ २७ ॥

जी बचा तो हो जलाते आँख तुम ।

आँसुओं ! तुमने बहुत हमको ठगा ॥

जो बुझाते हो कहीं की आग तुम ।

तो कहीं तुम आग देने हो लगा ॥ २८ ॥

काम क्या निकला हुए वदनाम भर ।

जो नहीं होना था वह भी हो लिया ॥

हाथ से अपना कलेजा थाम कर ।

आँसुओं से मुँह भले ही धो लिया ॥ २९ ॥

पद्य-प्रमोद

गाल के उसके दिखा करके मसे ।

यह कहा हमने हमें ये ठग गये ॥

आज वे इस बात पर इतने हँसे ।

आँख से आँसू टपकने लग गये ॥ ३० ॥

लाल आँखें कीं, बहुत विगड़े वने ।

फिर उठाई दौड़ कर अपनी छड़ी ॥

वैसेही अब भी रहे हम तो तने ।

आँख से यह वूँद कैसी ढल पड़ी ॥ ३१ ॥

वूँद गिरते देखकर यों मत कहो ।

आँख तेरी गड़ गई या लड़ गई ॥

जो समझते हो नहीं तो चुप रहो ।

किर किरि इस आँख में है पड़ गई ॥ ३२ ॥

है यहाँ कोई नहीं धूआँ किये ।

लग गई मिरचें न सरदी है हुई ॥

इस तरह आँसू भर आये किस लिये ।

आँख में ठंडी हवा क्या लग गई ? ॥ ३३ ॥

देख करके और का होते भला ।

आँख जो बिन आग ही यों जल मरे ॥

दूर से आँसू उमड़ कर तो चला ।

पर उसे कैसे भला ठंडा करे ॥ ३४ ॥

पाप करते हैं न डरते हैं कभी ।

चोट इस दिल ने अभी खाई नहीं ॥

सोच कर अपनी बुरी करनी सभी ।

यह हमारी आँख भर आई नहीं ॥ ३५ ॥

आँख का आँसू

है हमारे आँगुनों की भी न हद ।

हाय ! गरदन भी उधर फिरती नहीं ॥

देख करके दूसरों का दुख दरद ।

आँख से दो बूँद भी गिरती नहीं ॥ ३६ ॥

किस तरह का वह कलेजा है बना ।

जो किसी के रंज से हिलता नहीं ॥

आँख से आँसू छूना तो क्या छूना ।

दर्द का जिसमें पता मिलता नहीं ॥ ३७ ॥

वह कलेजा हो कई टुकड़े अभी ।

नाम सुनकर जो पिघल जाता नहीं ॥

फूट जाये आँख वह जिसमें कभी ।

प्रेम का आँसू उमड़ आता नहीं ॥ ३८ ॥

पाप में होता है सारा दिन वसर ।

सोच कर यह जी उमड़ आता नहीं ॥

आज भी रोते नहीं हम फूट कर ।

आँसुओं का तार लग जाता नहीं ॥ ३९ ॥

बू बनावट की तनिक जिनमें न हो ।

चाह की छींटें नहीं जिन पर पड़ीं ॥

प्रेम के उन आँसुओं से हे प्रभो !

यह हमारी आँख तो भींगी नहीं ॥ ४० ॥



मतलब की दुनिया

[चतुष्पद]

हैं सदा सब लोग मतलब गाँठते ।

यों सहारा है नहीं मिलता कहीं ॥

है कलेजा हो नहीं ऐसा बना ।

बीज मतलब का उगा जिसमें नहीं ॥ १ ॥

कब कहाँ पर दीजिये हम को बता ।

एक भी जी की कली ऐसी खिली ॥

था न जिस पर रङ्ग मतलब का चढ़ा ।

बू हमें जिसमें नहीं उसकी मिली ॥ २ ॥

वह करे जितना अधिक जी में जगह ।

हो मिठाई बात की जितनी बढ़ी ॥

लीजिये यह जान उतनी ही अधिक ।

मतलबों की चाशनी उस पर चढ़ी ॥ ३ ॥

प्यार डूबे लोग कहते हैं उमग ।

जो कहो अपना कलेजा काढ़ दूँ ॥

पर अगर वे निज कलेजा काढ़ दें ।

तो कहेगा वह कदा मतलब से हूँ ॥ ४ ॥

और का गिरते पसीना देख कर ।

जो कि अपना है गिरा देते लहू ॥

वे कहें कुछ, पर सदा उसमें मिली ।

बूझ वालों को किसी मतलब की बू ॥ ५ ॥

मतलब की दुनिया

एक परउपकार ही के वास्ते ।

था जहाँ भंडा बहुत ऊँचा गड़ा ॥

जो गड़ा कर आँख देखा, तो वहीं ।

था छिपा; चुपचाप मतलब भी खड़ा ॥ ६ ॥

थे भलाई के जहाँ डेरे पड़े ।

थी जहाँ पर हाट भलमंसी लगी ॥

घूम कर देखा वही मतलब खड़ा ।

आँख करके बन्द करता था ठगी ॥ ७ ॥

देखता ही दौमती का रँग रहा ।

जी मुरौबत का टटोला ही किया ॥

कब बता दो ए अधेरे में चलीं ।

हाथ में जब था न मतलब का दिया ॥ ८ ॥

दूब करके दूसरों के रंग में ।

जो कहीं कोई कली हित की खिली ॥

फूल जो मुँह से किसी के भी भड़ा ।

मतलबों की ही महँक उसमें मिली ॥ ९ ॥

दान के सामान सब देखे गये ।

देख डालीं डालियाँ बूही रँगी ॥

जाँच हमने की चढ़ावे की बहुत ।

मतलबों की थी मुहर सब पर लगी ॥ १० ॥

जंगलों में देख ली धूनी रमी ।

जोग ही में बाल कितनों का पका ॥

क्या हुआ घर से किनारे हो गये ।

कौन मतलब से किनारा कर सका ॥ ११ ॥

पद्य-प्रमोद

है बताती वीर की गरदन नपी ।

है सती की भी चिता कहती यही ॥

है यही धुन जौहरों से भी कढ़ी ।

आँच मतलब की नहीं किसने सही ॥ १२ ॥

जाति के हित की सभी तानें सुनीं ।

देश हित के भी लिये सब राग सुन ॥

लोक हित की गिटकिरी कानों पड़ी ।

पर हमें सब में मिली मतलब की धुन ॥ १३ ॥

दिल टटोल उदारताओं का लिया ।

रंगते सारी दया की देख लीं ॥

साधुता के पेट की बातें सुनीं ।

मतलबों को साथ लेकर सब चलीं ॥ १४ ॥

कौन उसके बोल पर रीझा नहीं ।

कौन सुनता है नहीं उसकी कही ॥

सब जगह सब काल सारे काम में ।

मतलबों की बोलती तूती रही ॥ १५ ॥

दिल टटोलो

क्या न होता है उसमें दिल उजला ।

मैले कपड़े से क्यों भिन्नकते हो ॥

देख उजला लिबास मत भूलो ।

दिल मैला कहीं न उसमें हो ॥ १ ॥

जो न सोने के कन उसे मिलते ।

न्यारिया राख किस लिये धोता ॥

मत रुको देख कर फटे कपड़े ।

लाल गुदड़ी में क्या नहीं होता ॥ २ ॥

है किसी काम का न रँग गोरा ।

जो दिखाई पड़ा हृदय काला ॥

है बड़ा ही अमोल काला रँग ।

मिल गया हो हृदय अगर आला ॥ ३ ॥

क्या हुआ उच्च वंश में जनमें ।

जो जँचा जी में पाप का कूँचा ॥

नीच कुल का हुए न कुछ बिगड़ा ।

जो हृदय हो महान ओ उँचा ॥ ४ ॥

कब भला ठाट है अमीरी का ।

ऐंठ जिसमें विकाश है पाती ॥

सादगी है कहीं भली, जिसमें—

है सुजनता भलक दिखा जाती ॥ ५ ॥

एक तिनका

मैं घमंडों में भरा ऐंठा हुआ ।

एक दिन जब था मुँड़ेरे पर खड़ा ॥

आ अचानक दूर से उड़ता हुआ ।

एक तिनका आँख में मेरी पड़ा ॥ १ ॥

मैं भिन्नक उठा, हुआ बेचन सा ।

लाल होकर आँख भी दुखने लगी ॥

मूँठ देने लोग कपड़े की लगे ।

ऐंठ बेचारी दबे पाँवों भगी ॥ २ ॥

जब किसी ढबसे निकल तिनका गया ।

तब 'समझ' ने यों मुझे ताने दिये ॥

ऐंठता तू किसलिये इतना रहा ।

एक तिनका है बहुत तेरे लिये ॥ ३ ॥

एक मसा

देख कर ऊँचा सजा न्यारा महल ।

और गहने देह के रत्नों जड़े ॥

पास बैठी चाँद-मुखड़े-वालियाँ ।

फूल ऐसे लाडिले, सुन्दर, बड़े ॥ १ ॥

याद कर फूली हुई फुलवारियाँ ।

फूल अलबेले महँक प्यारी भरे ॥

थी फलो से डालियाँ जिनकी लदी ।

बाग के वे पेड़ पीछे छरहरे ॥ २ ॥

फल रसीले और खा व्यंजन सभी ।

मुख सुखों का देख मन माना हरा ॥

तन लगे ठंडी हवा आनन्द पा ।

रात में अवलोक नभ तारों-भरा ॥ ३ ॥

कह उठा एक, राज-मद-माता हुआ ।

भौंह दोनों चौगुनी टेढ़ी किये ॥

कौन मुझ सा है आह ! मैं धन्य हूँ ।

है बना संसार सब जिसके लिये ॥ ४ ॥

एक मसा उस काल उसकी नाक पर ।

बैठ कर बोला लहू पी कनमना ॥

है बना तेरे लिये संसार सब ।

और मेरे वास्ते तू है बना ॥ ५ ॥

— — —

एक बूँद

ज्यों निकल कर बादलों की गोद से ।

थी अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी ॥

सोचने फिर फिर यही जी में लगी ।

आह क्यों घर छोड़ कर मैं यों कढ़ी ॥ १ ॥

दैव मेरे भाग में क्या है बदा ।

मैं बचूँगी या मिलूँगी धूल में ॥

या जलूँगी गिर अँगारे पर किसी ।

चू पड़ूँगी या कमल के फूल में ॥ २ ॥

बह गई उस काल एक ऐसी हवा ।

बह समुन्दर ओर आई अनमनी ।

एक सुन्दर सीप का मुँह था खुला ।

वह उसी में जा पड़ी मोती बनी ॥ ३ ॥

लोग यों ही हैं भिन्नकते, सोचते ।

जब कि उनको छोड़ना पड़ता है घर ॥

किन्तु घर का छोड़ना अक्सर उन्हें ।

बूँद लौं कुछ और ही देता है कर ॥ ४ ॥

— — —

रात का जागना

जी भरा है, आँखें हैं कड़ुआ रही ।

सिर में है कुछ धमक नींद है आ रही ॥

उचित नहीं है बहुत रात तक जागना ।

देह टूट कर है यह हमें बता रही ॥ १ ॥

सुर बाजों में मीठापन है कम नहीं ।

जहाँ वर गला है मीठापन है वहीं ॥

नाच रंग में मीठपन का रंग है ।

पर मीठी है नींद इन सबों से कहीं ॥ २ ॥

न्यारा रस कितने ग्रन्थों में है भरा ।

किसे नहीं मिला सतसंगति में मुख धरा ॥

काम काज की धुन भी है प्यारी बड़ी ।

पर संयम के बिना रहा कब मुख हरा ॥ ३ ॥

मनको है अपना लेती कितनी कला ।

नाटक-चेटक पर किसका नहीं जी चला ॥

खेल तमाशे ललचाते किसको नहीं ।

पर निरोग तन रहना है सबसे भला ॥ ४ ॥

— — —

काँटा और फूल

है न काँटों सा उभरना काम का ।

क्या रहा, जब दूसरों को दुख दिया ॥

सीख लेवें क्यों न खिलना फूल सा ।

जब किया तब और को पुलकित किया ॥ १ ॥

रङ्ग जिन पर हो भलाई का चढ़ा ।

सब जगह उनकी घटी सब दिन रही ॥

डालियों में है न काँटों की कमी ।

पर दिखाते फूल हैं दो चार ही ॥ २ ॥

जब उठीं आँखें हमें काँटे मिले ।

नॉक अपनी वैसी ही सीधी किये ॥

पर नहीं जाना निराले फूल ये ।

कब खिले औ किस समय कुम्हला गये ॥ ३ ॥

क्या बतावें, है कलेजा मल रहा ।

कुछ न काँटों का हुआ इनके किये ।

धूप निकली, लू चली, आँधी उठी ।

हा ! इन्हीं सुकुमार फूलों के लिये ॥ ४ ॥

काँटा और फूल

दूर आँखों से न वह काँटा हुआ ।

नोक से जिसकी लहू कितना बहा ॥

पर बिचारी तितलियों के वास्ते ।

दो दिनों भी फूल का न समा रहा ॥ ५ ॥

किस लिये काँटे बहुत दिन तक रहें ।

आह ! मेरा जी बहुत खिजला गया ॥

किसलिये इतना अनूठा फूल यह ।

आज फूला और कल कुम्हला गया ॥ ६ ॥

दो दिनों भी फूल रह पाया नहीं ।

पर बहुत दिन तक रहे काँटे अड़े ॥

जो भले हैं सब जिन्हें है चाहता ।

कब न जीने के उन्हें लाले पड़े ॥ ७ ॥



लोहित वसना

[पञ्चदश पदी]

हुआ दूर तम पुञ्ज दुरित तम सम्भव भागे ।
खिले कमल सुख मिले मधुप कुल को मुँह माँगे ॥
अनुरंजित जग हुआ जीव जगती के जागे ।
परम पिता पद कञ्ज भजन में जन अनुरागे ॥
छिति पर छटा अनूठी छाई ।

चूम चूम करके कलियाँ कमनीय खिलाती ।
परम मृदुलता साथ लता बेलियाँ हिलाती ॥
धमनी में रस रुचिर धार कर प्यार बहाती ।
सरस बना कर एक एक तरु दल सरसाती ॥
वही पवन सुन्दर सुखदाई ।

कर नभ तल को लाल दान कर अनुपम लाली ।
दिखलाती बहु चाव सहित चारुता निराली ॥
बनी लालिमा मयी विपुल तरु की हरियाली ।
लिये हाथ में खिले हुए फूलों की डाली ॥
प्यारी लोहित वसना आई ।

उषः काल

[चतुर्दश पदी]

है विभु केश कलाप रक्त कुसुमावलि अर्चित ।
या है भव असितांग लाल चन्दन से चर्चित ॥
हानित प्रातः दनुजात रुधिर धारा दिखलाई ।
या प्राची दिग्बधू वदन पर लसी ललाई ॥
प्रकृति सुन्दर कलित कपोल हुआ आरंजित ।
या है जग जीवन सनेह जगती कृत व्यंजित ॥
ललित कला है किसी कलामय की अति प्यारी ।
या पसरि है लाल लाल सुर ललना सारी ॥
तम में मंडल कान्ति रजोगुण को निवासी है ।
या शनि मंडल मध्य भूमि सुत विभा वसी है ॥
वही जलधि के नील सलिल में गौरिक धारा ।
या है असित वितान सुरंजित वसन मँवारा ॥
प्यारी रंगत अनुराग की रुचिर श्यामता में बसी ।
या प्रातःकालिक लालिमा गगन नीलिमा में लसी ॥

राग रंजित गगन

तमो मयी यामिनी तिमिर हों चला तिरोहित ।
काल जलधि में मग्न हुआ तारक चय बोहित ॥
ककुभ कालिमाटली उलूक समूह लुकाने ।
कुमुद बन्धु छवि हीन हुए कैरव सकुचाने ॥
वाले तम चुर लचय हुआ खग कुल कलरव रत ।
विकसे विपुल सरोज विनोदित हुआ मधु व्रत ॥
सुन्दर बहा समार रुचिर शीतलता कोले ।
शाखायें होंगई चारु तरु पल्लव डोले ॥
हुए सरित सर विपुल विमल तज श्यामल छाया ।
मोता जैसा ओप अमल जल में भी आया ॥
हुई लतायें ललित बेलियों पर छवि फैली ।
बनी अवनि कमनीय फेक कर चादर मैली ॥
तज आलस आँखें खोलिये लगा लोफहित से लगन ।
अनुराग सहित अवलोकिये अरुण-राग रंजित गगन ॥

भारत गगन

अवनति काली निशा काल कवलित होवेगी ।
दिशा कालिमा कूट नीति विदलित होवेगी ।
होगा कान्ति विहीन जाति गत कलह कलाधर ।
ज्योति जायगी गृह विवाद तारक चय की हर ॥
उन्नति बाधक वुरे सलूक उलूक लुकेंगे ।
भेद जनित अविचार रजनिचर निकल रुकेगे ॥
लोकहित करी शान्ति कमलिनी होगी विकसित ।
सब थल होगी रुचिर ज्योति जन समता विलसित ॥
बह स्वतंत्रता दायु करेगी परम प्रमोदित ।
होंगे मधुकर निकर नारि-नर वृन्द विनोदित ॥
होगा नाना सुख समूह खग कुल निनाद कल ।
उज्ज्वल होगा, जन्मसिद्ध अधिकार धरातल ॥
कर लाभ-स्वबांछित बालरवि कर देगा दुखतम कदम ।
देशानुराग नवराग से आ रंजित भारत गगन ॥१॥

— — —

उपा

[चतुर्दशी पदी]

क्या यह है नभ नील रंजिनी सु छवि निराली ।
या है लोक ललाम ललित आनन की लाली ॥
विपुल चकित कर चारु चित्र की चित्र पटी है ।
यात्रिलोक पति प्रीति करी प्रतिभा प्रगटी है ॥
परम पुनीत प्रभातकाल की प्रिय जननी है ।
या जग उज्ज्वल करी ज्योतियों की सजनी है ॥
अखिल भुवन अभिराम भानु सहचरी भली है ।
या सुरपुर कमनीय कान्ति की केलि थली है ।
तरह तरह की लोक लालसा की है लीला ॥
या है कोई कला प्रकृति अनुरंजन शीला ।
है रचना अति रुचिर रुचिरता लाने वाली ।
या अरुणोदय कलित यंत्र की है कलताली ॥
यह दृग विमोहिनी कौन है महा मनोहरता भरी ।
सुन्दर विभूति की सिरधारी लोहित बसना सुन्दरी ॥

वरयनिता

[चतुर्दश पदी]

वर वनिता है नहीं अति कलित कुन्तल वाली ।
भुवन मोहिनी काम कामिनी कर प्रति पाली ।
विधु वदनी रस मयी सरस सरसीरुह नयनी ।
अमल अमोल कपोलवती कल कोकिल वयनी ॥
उत्तम कुल की वधू उच्चकुल संभव वाला ।
गौरव गरिमावती विविध गुण गण मणि माला ॥
हाव भाव विभ्रम विलास अनुपम पुत्तलिका ।
रुचिर हास परिहास कुसुम कुल विकसित कलिका ॥
सुन्दर बसना बनी ठनी मधुमयी फवीली ।
भागभरी औ रागरंग अनुराग रङ्गीली ॥
अलंकार आलोक समालोकित मुद मूला ।
नीतिरता संयता बहु विकचता अनुकूला ॥
है वह वर वनिता जो रहे जन्मभूमि हित में निरत ।
हो जिसका जनहित जातिहित जगहित परमपुनीत व्रत

— — —

आर्य बाला

[छापै]

बहु ललामता बलित अति ललित रुचियों वाली ।
सकल लोक हित जननि भाव तालों की ताली ॥
मनुज रंजिनी कलित कला की कामद काया ।
नव नव लीलामयी मूल सब ममता माया ॥

कमनीय विधाता कर कमल की रचना का चरम फल ।
कल कीर्ति सुकुमुमावलि सजी जयति आर्य बाला सकल ॥१॥

कमला लौं सब काल लोक लालन पालन रत ।
गिरि नन्दिनी समान पूत पति प्रेम भार नत ॥
गौरव गरिमा मयी ज्ञान शालिनी गिरा सम ।
काम कामिनी तुल्य मृदुलतावती मनोरम ॥

सुरपुर अधिपति ललना समा प्रीति नीति प्रति पालिका ।
सब दनुज प्रकृति नर के लिये आर्य नारि है कालिका ॥२॥

वह बहु अनुपम साधन की है सिद्धि उदारा ।
वह है गुरुजन भक्ति भूमि की मुरसरि धारा ॥
वह है पति मन मधुप के लिये लतिका कुसुमित ।
वह है सुन्दर सरसि सरोजिनि संतति के हित ॥
वह है मन मोहन मुरलिका मधुर मुखी मृदु नादिनी ।
पुरजन परिजन परिवार जन गोप समूह प्रसादिनी ॥३॥

पद्य-प्रमोद

वह है ममतामयी पूत माता अवलंबन ।
वह है छाया समा प्रकृत जाया आलंबन ॥
परम प्रीति आधार भगिनि मणि की है वह खनि ।
सहज प्रेममय सुता लताओं की है सुश्रवनि ॥
पर दुख कातरता सदयता सहृदयता अवलंबिनी ।
वह है कुटुम्ब जन हित निरत परमोदार कुटुम्बिनी ॥४॥

पा जिनका विज्ञान बनी अति पावन श्रवनी ।
उन ऋषि गौतम कपिल व्यास की है वह जननी ॥
द्रोणार्जुन से धीर वीर औ महा धनुर्धर ।
भीष्म तुल्य भूरत्न पले उसका पय पी कर ॥
उसकी सुज्योति ही बुद्ध औ शंकर के उर में जगी ।
जिनके अनुपम आलोक से जगत तमोमयता भगी ॥५॥

नर है पीवर धीर वीर संयत श्रम कारी ।
है मृदुतन उपराम मयी तरलित उर नारी ॥
विपुल कार्य्य मय नर जीवन है प्रान्तर न्यारा ।
नाना सेवा निलय नारिता है सरि धारा ॥
मस्तिष्क मान साहस सदन वीर्यवान है पुरुष दल ।
हैं सहृदयता ममतावती पयोमयी महिला सकल ॥६॥

युगल मूर्ति सहयोग जनित है जग की सत्ता ।
लालन पालन सृजन तथा संकलन महत्ता ॥
निज निज कृतिरत रहे युगल के सिद्धि मिलेगी ।
किये अन्यथा प्रकृति चाल प्रतिकूल चलेगी ॥
हो उदय गगन तल में तभी बिधु ढालेगा रस घड़े ।
जब सुधाधार सी चाँदनी वृणवीरुध तक पर पड़े ॥७॥

आर्य बाला

हृदय हृदय मस्तिष्क सदा मस्तिष्क रहेगा ।
वीर्यवान सम पयोमयी को कौन कहेगा ॥
स अवसाद जन नवजीवन तब कैसे पावे ।
स अवसाद उपरामयी ही जब बन जावे ॥
युग भिन्न प्रकृति जो परस्पर हित बांछा से है बनी ।
उनकी विभिन्नता ही फलद है समानता से घनी ॥८॥

भली भांति यह तत्व आर्य्यतिय को है अवगत ।
इसीलिये वह हुई नहीं समता विवादरत ॥
पा माता पद उच्च, सदन की जो है देवी ।
सब कुटुंब जिसके सरोज पगका है सेवी ॥
वह क्यों समानता लाभ के लिये रहे चाहें भरी ।
जो वन सच्ची सहधर्मिणी है गृहपति हृदयेश्वरी ॥ ९ ॥

आत्म त्याग मंदार कुसुम से मंडित बाला ।
क्यों पहनेगी आत्म प्रेम कुरवक की माला ॥
जो उदारता सुधा परम रुचि से पी लेगी ।
वह क्यों प्रतिद्वंद्विता सुरा प्रेमिका बनेगी ॥
नर से समानता समर कर वह क्यों दिखलावे हुई ।
जो सुरसरि धारा लौं मिलित जगहित जलनिधि में हुई ॥१०॥

अहमहमिका उपेत स्वार्थ परता में डूबी ।
जिन अधिकारों के निमित्त अधिकाधिक ऊबी ॥
है समाज कमनीय गात की कुत्सित बाई ।
परम रुचिर संसार सरोवर की है काई ।
होगी बरविधि की बाधिका जो हो वाद विधायिनी ।
जाया जीवन अवलंबिनी जननी जीवन दायिनी ॥११॥

पद्य-प्रमोद

वह समाज अनुराग कुसुम खिलते कुम्हलावे ।
जिस में से बहुविध विलासिता की बू आवे ॥
कभी जाति हित का वह पादप पनप न पावे ।
जो अवलंबन स्वरुचिलताओं का बन जावे ॥
वह देश प्रेम नव जनित शिशु भूतल पर गिरते मरे ।
बर जीवन बहु नर-नारि का कूट नीति मय जो करे ॥१२॥

वह स्वतंत्रता रुचि प्रियता निजता जल जावे ।
जो सुशीलता मानवता का गला दबावे ॥
वह मतिमत्ता नीति चतुरता वंचित होवे ।
सत्य न्याय सौजन्य सुरुचि गरिमा जो खोवे ॥
वह गौरवममता समदता आत्म महत्ता ध्वंस हो ।
जो पति प्रियता हितकारिता भव वत्सलता मय न हो ॥१३॥

जो सामयिक प्रवाह है जगत बीच प्रवाहित ।
कैसे भारत अवनित न उससे होती प्लावित ॥
इसी लिये हो चली सुरुचि धारा कुछ गदली ।
गति मति कितनी आर्य्य कामिनी की है बदली ॥
पर काम चारुतर रजत का राँगा द्वारा कब चला ।
जलधर माला से आवरित सब दिन रही न विधुकला ॥१४॥

जिनका जीवनउच्च वेद वचनों द्वारा है ।
जिनकी रग में बही पुनीत रुधिर धारा है ॥
वे अति पावन चरित आर्य्य कुल की बालायें ।
भूलेंगी, पर तज न सकेंगी पूत प्रथायें ॥
कालान्तर में पा उन्हीं में परम अलौकिक आत्म बल ।
आजावेंगी आलोक में भूतल की महिला सकल ॥१५॥

कुल कामिनी

[छन्दः]

है तमतोम समान पापमय नयनों के हित ।
है रवितनया सलिल उसे जो है अमलिन चित ॥
है पति चाव निमित्त सुरस शृंगार सार वह ।
उसे सेवार सुप्रीति सरसिका सकते हैं कह ॥
है आतंकित कर गरल मय पन्नग पोशोंसे न कम ।
पामर निमित्त कुल कामिनी केश पाश है पाश सम । १ ॥

उसका सुन्दर भाल कान्त कञ्चन फलकोपम ।
अवगत होता है सुहाग लीलाथल के सम ॥
रजनी पति सुविभागसा विलसता है प्रति पल ।
होता है अनुकूल भाग्य आलोक समुज्ज्वल ॥
वह छटछटा सुविशालता चारु चौहटा ही नहीं ।
लीकों मिस उस पर चरित बल धरधारायें भी वहीं ॥ २ ॥

है मेहराव पुनीत भाव दर के अनुमानित ।
दूज कलाधर के समान है जन सम्मानित ॥
वे हैं वह सुकमान बंकता जिनकी अनुपम ।
कर देती है मदन कमान समाकुलता कम ।
सब काल कदम करती रही लौछित लोचन की लसी ।
कुल ललनाओं की भौंह द्वय भुकी युगल करवाल सी ॥ ३ ॥

पद्य-प्रमोद

सलज्जता सरसि सरोरुह परम मुग्ध कर ।
 हैं सुशीलता रुचिर सरित के मीन मनोहर ॥
 खंजन हैं कमनीय सद्यता प्रान्तर विलसित ।
 प्रेमिकता बर विपिन कुरंगम हैं मोहक चित ॥
 हैं निशित विशिख सम वेधते मलिन विचार बिहंग तन ।
 बहु पूत कलाओं के अयन कुल बालाओं के नयन ॥ ४ ॥

है शुक चंचु समान कुतेवर फल कर्त्तन पटु ।
 चलचित अलिके लिये तिलकुसुम के सम है कटु ।
 है तू नीर स्वकीय क्रिया शायक चयधारी ।
 कामी जन की काम जनित वासना विदारी ॥
 आनन छवि जल ऊँची लहर सकल सुवास विलासिका ।
 है तन गौरव गरिमा समा, कुल रमणी की नासिका ॥ ५ ॥

हैं अति अनुपम सीप बर बचन मुक्ता धारी ।
 हैं शुचिरुचिमय रागकुसुम विलसित कल क्यारी ।
 हैं पावन जन चरित सुधा पीने के प्याले ।
 हैं बर स्वर लहरी विलास के विवर निराले ।
 हैं प्रभु की सुकथित कीर्ति के परम पुनीत विहार थल ।
 पति मधुर कथन रस सिक्त से कान कुल बधू के युगल ॥ ६ ॥

है अति मंजुल मुकुर चिर महत्ता प्रति बिम्बित ।
 है राकापतिबिम्ब परम उज्ज्वल अकलंकित ॥
 है ग्लाव सुप्रसून भाव सौरभ विस्तारक ।
 मादक गोला है पुनीत मानस उपकारक ॥
 है मधुमय कुसुम मधूक का पति मन मधुप विमुग्ध कर ।
 सुन्दर कपोल कुल नारिका है विधि कृति कमनीय तर ॥ ७ ॥

कुल कामिनी

है बिम्बा फल लौं अपूत लोचन हित सगरल ।
है विद्रुम लो अशुचि लहरियों के हित अतरल ।
है लालोपम परम विमल आभा से विलसित ।
जपा तुल्य अनुकूल वायु बल से है विकसित ।
है रक्तिमाभ बंधूक सम विहित चित्त अनुरक्ति कर ।
आधार भूत मुख लालिमा कुल अबलाओं का अधर ॥ ५ ॥

है चपला की चमक चपल जन चंचल दृगहित ।
है मरीचिका मदन विमोहित मानस मृगहित ॥
है चाँदनी समान रजनि वत्सलता रंजिनी ।
है स्वर्गीय मरीचि मोहतम मान विभंजिनी ॥
है उत्तम धारा सुधा की अनुपम अधरोपरि लसी ।
लोकोत्तर कान्ति सहोदरा है कुल महिला की हँसी ॥ ६ ॥

है गंभीर विचार गगन विधु शुचिता अंकित ।
है उत्फुल्ल सरोज मंजु आमोद गौरवित ॥
उच्च मानसिक भाव केलिथल है अति आला ।
है कोमलता दया सदाशयता में ढाला ॥
है मुकुर प्रकृति प्रतिबिम्ब का सद्गज सरलता का सदन ।
लोकोपकार आलोकमय कुल वतिताओं का वदन ॥ ७ ॥

आर्य महिला

[चौपदे]

मुग्ध कर है राकानिशि कान्त ।
सुरसरी का है पावन आप ॥
स्वेत सरसिज है परम प्रफुल्ल ।
आर्य महिला का कीर्तिकलाप ॥ १ ॥

भाव से उसके हो भरपूर ।
भाव मय बना जगत आगार ॥
गौरवों का उसके पग पूज ।
गौरवित हुआ सकल संसार ॥ २ ॥

अंक में पल उसके बहुकाल ।
सुजनता आँख सकी है खोल ॥
सीख कर उससे कल आलाप ।
चित्त ले सकी सभ्यता मोल ॥ ३ ॥

भक्ति से छू उसका पदकंज ।
उच्च हो पाया मनुज समाज ॥
सिद्धि उसने कर दी वह दान ।
वार दें जिस पर सुरपुर राज ॥ ४ ॥

वही है गुण गरिमा अवलंब ।
ज्ञान का उस से हुआ विकास ॥
अधर पर उसके पाया देख ।
मुक्ति का महा मनोहर हास ॥ ५ ॥

तरु और लता

[छापै]

तरु कर छाया दान दुसह आतप है सहता ।
सुख देने के लिये लता हित रत है रहता ॥
शिर पर ले सब काल सलिल धर की जलधारा ।
बहुधा करक समूह पात का सह दुख सारा ॥
अति प्रबल पवन के बेग से विपुल विधूनित हो सतत ।
पालन करता है लता का कर परिपालन पूत व्रत ॥ १ ॥

होता है जिस काल कठिन आघात धिटप पर ।
कँपता है उस काल लता का गात अधिक तर ॥
कटती छँटती बार बार है समधिक नुचती ।
पतन हुए पर भी न लता है तरु को तजती ॥
सुख में सुखित बहुत बनी दुख में परम दुखित रही ।
वह जीती मरती विकसती रहती है तरु साथ ही ॥ २ ॥

पति है वह जो प्रीति निरत तरु सा दिखलावे ।
है पत्नी वह सती जो लता सी बन पावे ॥
पति पत्नि जो प्यार रङ्ग में रँगे न होवें ।
मनो मलिनता जनित जो न सारा मल खोवें ।
तो क्यों वरणीय विधान से परिणय बंधन में बँधे ।
व्या प्रेम साधना में लगे साधन मंत्र न जो सधे ॥ ३ ॥

पद्य-प्रमोद

पति हो कामुक परम कामुका पत्नी होवे ।
पति भूले पति भाव पतिव्रत पत्नी खोवे ॥
कर मत्सर मद पान बने प्रियतम मतवाला ।
समता मायामयी मानिनी होवे बाला ॥
पति अहं भाव से हो भरा वनिता हो ममता नता ।
तो तरुवर है पति से भला, बर है वनिता से लता ॥४॥
